पथ के साथी

(पूज्य आर्यिका श्री विज्ञानमती माताजी की तत्त्वदृष्टि)

प्रस्तुति

आर्यिका श्री 105 आदित्यमती माता जी

प्रथम खण्ड : प्रेरणास्पद प्रसंग	(15-31)
द्वितीय खण्ड : खट्टा-मीठा यथार्थ	(32-62)
तृतीय खण्ड : सवाल आपके, जवाब आर्यिका श्री के	(63-80)

प्रकाशक

धर्मोदय साहित्य प्रकाशन

सागर (म. प्र.)

पथ के साथी

(पूज्य आर्यिका श्री विज्ञानमती माताजी की तत्त्वदृष्टि)

प्रस्तुति	:	आर्यिका श्री आदित्यमती माताजी
संस्करण	:	द्वितीय, अगस्त, 2009
आवृत्ति	:	3300 प्रतियाँ
लागत मूल्य	:	12/-
प्राप्ति स्थान	:	धर्मोदय साहित्य प्रकाशन महिला आई. टी. आई. के सामने ज्वाय स्कूल के बाजू में खुरई रोड, सागर (म. प्र.) मो. 094249-51771
संकल्पना	:	निधि कम्प्यूटर्स, जोधपुर
मुद्रक	:	विकास आफसेट, भोपाल

❋ अनुक्रम ❋

- लीला से विज्ञानमती ४
- आप? ९
- जयवन्तो माँ ११
- असम्भव है १३

— प्रथम खण्ड —

प्रेरणास्पद प्रसंग

१. चिन्ता की कोई बात नहीं १५
२. ध्यान रखो, दिल पर घाव नहीं होने पाये १५
३. कभी धूप कभी छाँव १६
४. अपन भी कई बार हिरण बने हैं १६
५. फिर भी तृप्ति नहीं हुई १७
६. कषायों को दबाना सिखा दो १८
७. मैं भी तो कुछ साधना करूँ १८
८. आत्मा इन सबसे परे है १९
९. हम तो जन्मते ही मोटर साथ लाये हैं २०
१०. आज मेरी भी परीक्षा है २०
११. इनमें क्यों उलझना? २१
१२. धन्य है आपका आध्यात्मिक बल २१
१३. अच्छा है, किसी बहाने से तो छूटा २२
१४. पूरे शरीर में २३
१५. आप कहाँ के हैं? २३
१६. उनके बराबर नहीं तो थोड़ा ही कर लें २४
१७. आखिर क्या है यह? २५
१८. नीति तो यही है २५
१९. अनन्त बार इसी में उलझे हैं २६
२०. फिर क्यों खटपट हो २६
२१. एक रात ही तो निकालनी है २७
२२. जैसा सुना वैसा पाया २८
२३. कुछ-कुछ और २९
२४. न बाहर से आयी न बाहर गयी ३०

लीला से विज्ञानमती.....

भारतवर्ष श्रीसम्पन्न देश है। यह श्री विशेषकर चार रूपों में स्पष्ट है धन-सम्पत्ति, वीरता-पराक्रम, सांस्कृतिक समृद्धि और अध्यात्मवाद। भारत को ऋषियों और कृषकों का देश भी कहा जाता है। भारत विश्वगुरु के रूप में इन सन्तों-महन्तों के कारण प्रतिष्ठित है। भौतिक दृष्टि से इसे **'सोने की चिड़िया'** भी कहा जाता है तो अध्यात्म की दृष्टि से महान् त्यागी साधकों, मनीषियों, विचारकों, सन्तों, भगवन्तों का समागम सदैव बने रहने के कारण इसे महापुरुष-प्रसविनी वसुन्धरा भी कहा जाता है। यहाँ की सांस्कृतिक समृद्धि रत्नसदृश अनमोल साहित्य, कला-कौशल, मन्दिर-मूर्ति, उच्च नैतिक परम्पराओं, अहिंसा सत्य पूर्ण निर्मल आचरण से सदैव शोभायमान होती रहती है। बाहुबल और पराक्रम के अन्तर्गत राजा-महाराजाओं के शौर्य से और ऋषि-मुनियों के तप-त्याग साधना रूप आध्यात्मिक अनुष्ठान से सुशोभित है। सचमुच भारत पुण्य पृथ्वी है, तपोभूमि है, धर्ममही है और शाश्वत सुख की प्राप्ति का साधनाक्षेत्र भी यही है। दिगम्बर सन्त इस वसुन्धरा की अमूल्य निधि हैं।

इतिहास में ऐसे महापुरुष विरले ही मिलेंगे जो जन्म से चारों 'श्री' सम्पन्न हों किन्तु अपने पुरुषार्थ से वे चारों 'श्री' से समृद्ध जरूर हुए हैं। मैं आपको इस देश के एक ऐसे प्रान्त की ओर ले चलती हूँ जिसे रेगिस्तान भी कहा जाता है और राजस्थान भी। यह प्रान्त जड़ और चेतन रत्नों की खानों से समृद्ध है तो अपने गौरवपूर्ण इतिहास के लिए भी प्रसिद्ध है। यहाँ के मारवाड़ी अपने वेशविन्यास से ही बिना बोले अपना परिचय देते हैं, तो मेवाड़ी वीर-वीरांगनाएँ अपने पराक्रम के लिए किसी परिचय की अपेक्षा नहीं रखते हैं। महाराणा प्रताप की वीरभूमि है यह। यहीं प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण, राजारजवाड़ों के लिए

प्रसिद्ध उदयपुर नामक नगर है। कहते हैं कि उदयपुर के राजा ने अपनी बेटी के लिए क्रीड़ा करने हेतु एक सुन्दर उपवन बनवाया था जो आज पूरे देश में 'सहेलियों की बाड़ी' के नाम से ख्यात है। झील के बीचों-बीच बना राजकुमार का महल पर्यटकों का मन बरबस ही अपनी ओर आकर्षित करता है। प्राकृतिक और ऐतिहासिक समृद्धि से भरपूर भोगों का आलय बना उदयपुर भारत का छोटा कश्मीर कहा जाता है। इसके पास ही अध्यात्म की पराकाष्ठा लिये हुए दि.जैन अतिशय क्षेत्र अणिन्दा पार्श्वनाथ जी अपनी शोभा से जनपद की समृद्धि को बढ़ा रहा है। इस क्षेत्र को पहले उडिन्दा पार्श्वनाथ के नाम से जानते थे, सुना है कि यह मन्दिर यहाँ पर उड़कर आया था इसलिए इसे उडिन्दा और कालान्तर में अणिन्दा-पार्श्वनाथ के नाम से प्रसिद्धि मिली। यहीं पर निकटस्थ ग्राम भिण्डर नारी रत्नों की आभा से जगमगा रहा है। धरती को रत्नगर्भा कहा गया है लेकिन यह तो मात्र जड़ रत्नों को ही उत्पन्न करती है जबकि नारी तो चेतन रत्नों को उत्पन्न करती है जिनकी दीप्ति से, कान्ति से सम्पूर्ण जनमानस ही नहीं वरन् रत्नगर्भा कही जाने वाली धरती भी जगमगा जाती है। जिनका प्रकाश मात्र मनुष्यों को ही नहीं वरन् देवों और पशुओं को भी मार्ग दिखाता है और ज्ञान-ध्यान, साधना, आचरण से जो प्राणी मात्र को अंगुली पकड़कर चलना सिखाते हैं जीवन जीना सिखाते हैं। जिसप्रकार माँ घुटनों के बल चलने वाले अपने बालक को अंगुली का सहारा देकर खड़ा होने का साहस प्रदान करती है उसी तरह ये चेतन रत्न संत्रस्त, भयावह, पीड़ित मानवता से भ्रमित समाज को अपने जीवन शैली रूप प्रकाश के माध्यम से मानव तो क्या भगवान तक बनने का साहस प्रदान करते हैं। इन रत्नों को प्राप्त करने का उपाय इनका गुणगान मात्र नहीं वरन् इनके जैसा आचरण करना है।.....

अपनी बात चल रही थी भिण्डर ग्राम को देदीप्यमान करने वाले चेतन रत्न की। श्रीमान् बालूलालजी की लोकाचार से परिपूर्ण धर्मपरायणा पत्नी श्रीमती कमलादेवी की कुक्षि से द्वितीय कन्या के रूप में कुँवारशुक्ला पंचमी सन् १९६३ को कन्यारत्न ने जन्म लिया । जिसकी प्रसूति की तिथि ही कह रही थी कि कुँवार-लोकमान्यतानुसार कड़वे दिन अर्थात् संसार कड़वा है। शुक्ल-अर्थात् सफेद, निर्मल, उज्ज्वल, धवल परिणाम करके पंचमी अर्थात् पंचम गति मोक्ष

को प्राप्त करना है। सन् है १९६३ अर्थात् ६३ का आँकड़ा पारस्परिक मिलन का प्रतीक है। अत: 'सत्त्वेषु मैत्री' की भावना रखो और सबके प्रति मैत्रीभाव रखने वाला ही मोक्ष पुरुषार्थ कर सकता है। ऐसा लग रहा था मानों जन्म लेने वाली बालिका ने (तिथि और सन्) अपना मंतव्य ही प्रकट कर दिया हो कि मैं संसार में फँसने के लिए नहीं, संसार से पार होने के लिए ही आयी हूँ। तभी तो घर में और सन्तानों के होने पर भी दादा-दादी, माता-पिता, काका-काकी·····सभी को इस सन्तान के प्रति विशेष अनुराग था। ''होनहार-बिरवान के होत चीकने पात'' वाली कहावत को चरितार्थ करते हुए इसकी शैशव क्रीड़ाएँ देखकर दादा-दादी ने नाम भी लीला रख दिया। और लीला अन्वयार्थ नाम वाली होकर अपनी बाल-सुलभ चेष्टाओं से सहज ही सभी को अपनी ओर आकर्षित करने लगी। बालिका थी भी इतनी सुन्दर कि आने-जाने वाले सभी उसे अपनी गोद में उठाते ही थे, मिलनसार प्रकृति होने से वह भी सभी के पास खेलती रहती। चार-छह माह की बालिका कभी भी माँ के किसी भी कार्य में विघ्न नहीं डालती थी मानों बचपन से ही कर्मबंध से भयभीत थी। कभी किसी वस्तु के लिए जिद नहीं करना, न अपने भाई-बहिनों से लड़ना-झगड़ना, उसके संतोष गुण को प्रकट करता था वैसे तो माँ के संस्कार ही सन्तान में आते हैं लेकिन कभी-कभी पूर्वोपार्जित संस्कारों से भी संस्कारित होती है सन्तान। और जब स्वभावत: ही सदाचरण हो, माँ भी संस्कारित करे तथा उसमें भी साधु-सन्तों का योग मिल जाये तो सोने पर सुहागा वाली बात बन जाती है।

हुआ ऐसा ही कि ८ वर्ष की उम्र होते-होते बालिका को आचार्य शिवसागर जी महाराज का सान्निध्य मिल गया और उसी समय से अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह आदि धर्म के बीज आरोपित हो गये। फिर १०-१२ वर्ष की होने पर आर्यिका चन्द्रमती जी, आर्यिका सिद्धमती माताजी ने योग्य खाद-पानी देकर बीज को अंकुरित कर दिया। अंकुरित हुआ वह बीज जिसे माता-पिता के आचार-विचार सम्हाल रहे थे, उसने योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव पाकर पौधे के रूप में लहलहाना शुरू कर दिया। प्रतिदिन जिनदर्शन करना, पूजन करना, स्वाध्याय करना, महापुरुषों के जीवन-चरित्र पढ़कर अन्तरंग में साहस-शौर्य प्राप्त करना, तो सतियों के जीवन को आदर्श बनाकर समता-धैर्य

रखना सीखा। किशोरावस्था से यौवनावस्था में प्रवेश होने पर भोगसामग्री लुभा नहीं पायी, नारी सुलभ शृंगार भी आपको अपना ग्राहक नहीं बना सका। आत्मा निरंतर वैराग्य की ओर बढ़ने लगी। मन भी कहता कि मुझे तो राग-रंग को छोड़कर आत्मसंग प्राप्त करना है लेकिन विनयवती, लज्जावती, संकोचशीला होने से माता-पिता के समक्ष कुछ भी नहीं कह पायी तथा ठोस आलम्बन न मिलने के कारण भी अपने भाव किसी को न बता सकी और इनकी १८ वर्ष की उम्र होते-होते माता-पिता अपने कर्त्तव्य से मुक्त हो गये अर्थात् आपका विवाह कर दिया गया। विवाह हो जाने से जहाँ ससुराल वाले प्रसन्न थे कि हमें एक धर्मनिष्ठ बहू मिल गयी है तो माता-पिता भी निश्चिंत हो गये थे कि बेटी को योग्य घर, वर मिल गया लेकिन इनकी स्वयं की आत्मा रो रही थी, दुखी थी भीतर से। यही ध्वनि निनादित होती थी कि नहीं, ''मुझे इस भोग-विलास में नहीं रहना है।'' विवाह बंधन में फँसने के बाद भी इन्होंने अपने आचरण में, धार्मिक क्रियायों में कोई परिवर्तन नहीं आने दिया। वही जिनपूजा, अर्चना, स्वाध्याय, जाप करती रहीं तो इधर इनकी क्रियायें भी त्यागी व्रती जैसी बनी रहीं। तभी तो घर में बहू के कार्यों से बड़े लोग अष्टमी, चतुर्दशी की जानकारी ले लेते थे अर्थात् बहू अपने कपड़ों को निचोड़कर सुखा रही है, मतलब आज अष्टमी या चतुर्दशी है। बहू के सुबह उठने से सभी लोग 'अब ४-५ बज गये हैं,' बिना घड़ी देखे ही जान लेते थे। सभी कुछ करते-करते भी घर कारागृह जैसा ही लगता था इन्हें, इसलिए ये लक्ष्य-प्राप्ति के उपाय ढूँढ़ती रहीं और भाग्य ने भी साथ दिया इनका। आचार्यकल्प विवेकसागर जी महाराज का वर्षायोग गृहनगर में हो गया और मिल गया भूखे को भोजन। आचार्यकल्पश्री के संघ में ब्र. कुसुम दीदी (आर्यिका विशालमती माता जी) थीं, प्रतिदिन उनके पास जाना, पढ़ना, प्रवचन सुनना·····आदि सभी कार्य समयसीमा के साथ ही होते थे फिर भी इन्होंने अपना कार्य पूरा कर लिया। घर में भी सभी को लगने लगा था कि यह घर में नहीं रहेगी। वैराग्य दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा था। सभी ने बन्धनों पर बन्धन बाँध दिये, परन्तु पति के मोह-ममता-राग का शिकंजा भी आपको सांसारिक बंधनों में नहीं बाँध सका। इधर माता-पिता भी प्रयास कर रहे थे कि लीला घर छोड़ कर न जाय, उधर ससुराल वाले भी अपनी

कुलवधू को रोकने का प्रयास करते रहे पर सबल वैराग्य को निर्बल राग का बंधन कहाँ बाँध पाता है; समय पाकर बहू लीला घर से निकलकर गुरु का सहारा पाकर चल पड़ी मोक्षमार्ग पर। १९८३ में घर छोड़कर आ गयीं भानपुरा गाँव में, मिल गयी गुरु की छाँव। गुरु का समागम प्राप्त कर आत्मा बढ़ चली अपने गन्तव्य की ओर। अल्प समय में ही जौहरी ने हीरे को परख लिया और संयम रूपी छैनी से दिया तराश। साधक की निष्ठा, आस्था तथा साधना की गहराई की थाह लेकर (२ फरवरी १९८५ दिन शनिवार) माघ शुक्ला द्वादशी को गुरु ने दिया दीक्षा का प्रसाद। भव्यात्मा का प्रयास सफल हुआ **लीला** हो गई **आर्यिका विज्ञानमती।**

❋ आर्यिका संघ ❋

पूज्य आर्यिकाश्री विज्ञानमती माताजी

१. आर्यिकाश्री वृषभमती माताजी

२. आर्यिकाश्री आदित्यमती माताजी

३. आर्यिकाश्री पवित्रमती माताजी

४. आर्यिकाश्री गरिमामती माताजी

५. आर्यिकाश्री सम्भवमती माताजी

६. आर्यिकाश्री वरदमती माताजी

संघस्थ बहिनें :

ब्र. कंचन दीदी, ब्र. विनीता दीदी,
ब्र. नीली दीदी, ब्र. शोभा दीदी

आप.....

राजस्थान से उद्गमित गंगा **आर्यिका माँ विशालमती** माता जी का आलम्बन लेकर गुरु **'विवेकसागर'** में संगमित होती हुई **'विद्यासागर'** में समाहित हो अपने असीमपने को प्राप्त हुई। भवसागर का किनारा प्राप्त करना है तो आइये, इस गंगा का सान्निध्य कीजिये और कर्मों के कीचड़ को धो डालिए।

'प्रतिभा, श्रम और **संगठन शक्ति'** ये तीनों गुण जिस व्यक्तित्व में साकार हुए हैं उसका नाम है आर्यिका विज्ञानमती माताजी !

आपके आध्यात्मिक चिन्तन, तत्त्व चर्चा व निर्दोष चर्या को देखकर ही तो प्राज्ञजन आपको **'चतुर्थकालीन आर्यिका'** कहते हैं। अहिंसा धर्म के सूक्ष्म-चिन्तन को आपसे सुनकर और उसे आपके आचरण में देखकर ही दुनिया आपको **अहिंसा की सच्ची पुजारिन** कहती है। पठन-पाठन ही आपका पथ है।

आपकी **संस्कार-मंजूषा** कृति को पढ़कर विद्वानों ने आपको **अनुभवों की मणि** कहा है। आप द्वारा रचित विधान, पूजन, भक्तिपाठ और गुरु स्तुतियाँ पढ़कर आपको **'प्रभु की समीचीन भक्त', 'गुरु की अनन्य श्रद्धावती'** कहा है। तत्त्वार्थसूत्र की आपकी प्रश्नोत्तर टीका के बृहद्काय दो खण्डों का **तत्त्वार्थ-मंजूषा** के रूप में अवलोकन कर संत-मनीषी विचारकों ने आपको **'अथक-परिश्रमी'** की संज्ञा दी है।

शील-मंजूषा पढ़कर जनमानस ने आपको शील की झील में सराबोर करने वाला कहा है।

''साधना, तप, त्याग ही आपकी गुणधर्मिता है।'' रीति-नीति, प्रीति-प्रतीति में साम्य परिणाम रखने वाली दुर्लभ व्यक्तित्व की धनी हैं आप, चुनौतियों के लिए दीपस्तम्भ हैं।''

सहनशील-गंभीर-प्रसन्न मुद्रा ही आपके व्यक्तित्व की चिरसंगिनी है। काया से कोमल कली होते हुए भी आप **'संकल्प की वज्रशिला'** हैं। पूज्य. आर्यिकाश्री उस पुष्प की भाँति हैं जो मसले जाने पर भी दोनों हाथों को समान रूप से ही सुरभित करता है। निन्दक और प्रशंसक को आप समान रूप से ही देखती हैं। समान रूप से ही उनके कल्याण की भावना रखती हैं। आपके जीवन के प्रत्येक क्षण में, काया में, मन के अणु-अणु में अगाध वात्सल्य भरा है, आपका हृदय स्थिर सरोवर के समान शान्त, गम्भीर और विशाल है, ऐसी पूज्य माँ को शत-शत नमन-नमन-नमन।

जयवन्तो माँ.....

श्री स्याद्वाद रूपी अमोघ लाञ्छन से चिह्नित जिनशासन में युग-युगान्तर में अनेकानेक तीर्थंकरों, आचार्य भगवन्तों, महापुरुषों ने जन्म लेकर अपनी निरतिचार चर्या से, रत्नत्रय रूपी धन से, निर्मल परिणामों से, पोषक कार्यों से जिनशासन की गरिमा, महिमा और कीर्ति को सर्वांग से वृद्धिंगत किया है। वर्तमान में भी अनेकानेक आचार्यों, संतों, मुनियों ने उसी गौरवपूर्ण गरिमा को बढ़ाते हुए अपनी साधना, ध्यान-ज्ञान से सर्वत्र अतिशय यश को अर्जित किया है। इसी शृंखला में **चारित्र-चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर जी महाराज** की परम्परा में बहुभाषाविद्, संस्कृत भाषा में महाकाव्यों के स्रष्टा, ज्योतिष में पारंगत, निमित्तज्ञानी, जिनागम के प्रवरपंडित, बाल्यावस्था से ही ज्ञान के अधिकृत प्रवक्ता, **चारित्र-शिरोमणि आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज** ने अपने ज्ञान रूपी सूर्य से सम्पूर्ण श्रमण-संस्कृति को और साहित्य जगत् को आलोकित किया। मुनिश्री के इसी ज्ञानालोक से अनेकानेक साधु-साध्वियों ने अनमोल प्रकाश पुंज प्राप्त किया है। आपके ही ज्ञान-चारित्र से देदीप्यमान **आचार्य विद्यासागर जी** और **आचार्यकल्प (स्वर्गीय) विवेकसागर जी महाराज** ने आज सम्पूर्ण भारत में साधु-साध्वियों की सबल शृंखला तैयार की है। इस कड़ी में पूज्य **आर्यिका श्री विज्ञानमती माताजी** विशिष्ट स्थान रखती हैं। आप ज्ञान-ध्यान, तप-त्याग, समता-गंभीरता, उदारता-वत्सलता, संघर्षशील प्रेरक जीवन, सहिष्णुता-करुणा·····आदि अनेकानेक गुणों से सुसज्जित हैं। तपोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, अनुभववृद्ध तो आप हैं ही, साथ में अहिंसा के प्रति आपकी सूक्ष्म-दृष्टि आपके गुरुवर्य की याद दिलाती है। आपके पठन-पाठन की शैली और तप-त्याग की प्रवृत्ति अपने आप में अनूठी है। आपका वात्सल्यसिक्त आभामण्डल जनमानस और त्यागीवृतीवृन्द को अपनी ओर बरबस ही आकर्षित कर लेता है। तभी तो वह आपकी प्रवृत्तियों और चर्या को अपने अध्यात्म पथ का पाथेय बना

लेता है। आप अपने गुरु की धर्मसुता हैं, सरस्वती की वरद पुत्री हैं। ऋजुता-मृदुता का अद्‌भुत संगम है आपमें। माधुर्य, गाम्भीर्य और औदार्य का विशाल त्रिवेणी संगम हैं आप । अल्पवय में ही अन्तर्यात्रा की ओर उन्मुख होने वाली पू. आर्यिकाश्री साधना, संयम और सृजन की सशक्त प्रकाशस्तम्भ हैं। आपका चिन्तन और उसकी अभिव्यक्ति का कौशल सहज ही हजारों-हजारों श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर अपनी तरफ आकर्षित करता है। दैनिक जीवन को परिलक्षित करने वाले पौराणिक शैलीमय प्रवचन प्रत्येक श्रोता के अंतर्मन को झंकृत कर देते हैं। आप आगम की गूढ़ ज्ञाता हैं तो जिनवाणी की प्रखर व्याख्याता भी हैं। जिनके दर्शन करते ही ऐसी प्रतीति होती है कि जैसे ये धरा पर स्वपर-कल्याण के लिए ही अवतरित हुई हैं। आपकी सौम्यमुद्रामय दृष्टि जिस किसी पर पड़े तो वह स्वयमेव ही पावनता को प्राप्त कर लेता है। उसका समग्र जीवन परिवर्तित हो जाता है। पूज्य माँ एक ऐसी प्राकृतिक ऊर्जा का स्रोत हैं जिनका सामीप्य पाते ही अंत:करण में शांति की एक लहर उठती है जो जीवन की आपाधापी और व्याकुलता को क्षणमात्र में ही शांत कर देती है। ज्ञान का गाम्भीर्य, साधना का उत्कर्ष, प्रवचनों का जादू और मधुरस्मिता मुद्रा का आकर्षण इतना जबर्दस्त है कि श्रद्धा स्वयं साष्टांग नमस्कार करने को उद्यत रहती है।

'यथा नाम तथा गुण' यानी विशिष्ट ज्ञान (विज्ञान) से मण्डित ऐसी निकट भव्यात्मा को कोटि-कोटि प्रणाम·····।

जिनके जीवन में धर्म, दर्शन, आचरण, संस्कृति तथा अध्यात्म का पंचामृत सदैव प्रवाहित रहता है ऐसी पूज्य माँ यथाशीघ्र मनुष्य पर्याय प्राप्त कर मुक्तिमहल में प्रवेश करे, यही कामना है।

हे माँ ! आप दीर्घकाल तक रत्नत्रय के तेज से सम्पूर्ण जगत् को आलोकित करती हुईं हम सभी को मोक्षमार्ग पर बढ़ाते हुए जयवन्त हों, जयवन्त हों, जयवन्त हों।

असम्भव है.....

उपमातीत, असीम, अनेकानेक विशेषताओं की प्रभा-पुंज पूज्य माँ के व्यक्तित्व और कृतित्व को शब्दों में बाँध पाना असंभव है। फिर भी आप सदृश विभूति का परिचय नयी पीढ़ी को देना है ताकि जिस प्रकार के आचरण से आप समाज, राष्ट- और जनमानस की विभूति बनी हैं उसी प्रकार से नयी पीढ़ी भी आपका अनुकरण करके अपना जीवन बनावे। आपका गौरवपूर्ण जीवन हमें दीनता-हीनता के दायरे से निकालकर विकास के मार्ग पर चलने के लिए प्रोत्साहित करता है। गहराती काली घटाएँ जब छहर-छहर-छहराकर नभमण्डल में छा जाती हैं तब मयूर से कौन कहता है कि उठो, नाचो, पर स्वयमेव ही उसके पैर झूम-झूमकर नाचने लग जाते हैं, पंख खुल-खिल जाते हैं उसी प्रकार आपकी (पू. माँ की) दीक्षाकी रजत जयन्ती के शुभ अवसर पर मेरा मन मयूर नाच उठा और नाचे भी क्यों न, माँ ! आपने ही मुझ जैसी पामर को पवित्र बनाकर मोक्षमार्ग का पथिक बना दिया और दिशाबोध देकर अंगुली पकड़कर चला रही हैं। जीवन को परिवर्तित करने वाली आत्मोपकारी माँ ही तो सच्ची माँ हैं।

वास्तव में, माँ का व्यक्तित्व इतना मोहक है कि आपके समीप आने वाला व्यक्ति आपके वात्सल्य से, ज्ञान से, आचरण से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता है। अपनत्वपूर्ण सहज-सरल व्यवहार जाने-अनजाने में सभी जिज्ञासुओं को अपनी ओर खींच लेता है। भौतिक युग में आगमिक-आध्यात्मिक चर्या का मापदण्ड यथावत् बनाये रखना बहुत कठिन कार्य है। आपका सकारात्मक चिन्तन जन-मानस को वैचारिक प्रदूषण से बचाकर जीवन में आशावादी बनने की प्रेरणा देता है। आप हर शरणागत के जीवन में आयी हुई विषमताओं, आपदाओं को अपनी मधुर मुस्कान से और तर्क-पूर्ण युक्तियों से सुख सरिता में परिवर्तित कर देती हैं। सरलता और सजगता पूज्य माँ का ऐसा गुण है जो

जन साधारण का ही नहीं अपितु प्राज्ञ जगत् की भी श्रद्धा का कारण बनता है। इनकी सहज-सलोनी नैसर्गिक छवि को निर्निमेष निहारने का मन होता है। चर्चा, प्रवचन या कथा सुनते समय ऐसा लगता है कि यह अमृतवाणी रूपी सरिता अविरल बहती रहे। विश्वोपकारी, स्वपरोपकारी यह दिव्यात्मा चिरकाल तक अपने चारित्र की सुरभि से जीवनबगिया महकाती रहे, इसी पवित्र भावना से श्रीचरणों में कोटि-कोटि वंदामि·····।

जिस जीवन का विस्तार अंतरिक्ष के समान असीम हो उस विराट् व्यक्तित्व के संदर्भ में कुछ लिखना मेरे लिए सम्भव नहीं है। ठीक भी है, कैसे लिखें आपके असंख्यात गुण संख्यात शब्दों में, असीमित कीर्ति सीमित कागज में, अनुपम यश उपमित स्याही से। जब-जब सोचते हैं तब भाव तो बहुत एकत्र हो जाते हैं पर शब्द बनकर कागज पर उतर नहीं पाते हैं, वे उन बादलों की तरह हैं जो घुमड़-घुमड़ कर आते तो हैं पर बिना बरसे ही लौट जाते हैं।

जिस प्रकार माली बगीचे के सभी फूलों को गुलदस्ते में संकलित नहीं कर सकता उसी प्रकार मेरी अल्पबुद्धि भी पूज्य माँ के गुणों को लेखनी के माध्यम से कैसे लिख सकती है? अनन्तोपकारी, भव्य-जीवों को तारने वाली माँ की छत्रछाया मेरे अन्तिम श्वास तक मुझ पर बनी रहे और आपकी वरदानी छाँव में हम सभी रत्नत्रय-आराधना, आत्म-साधना आनंद के साथ करते रहें; इसी भावना पूर्वक 'यथा नाम तथा गुण' वाली पूज्य माँ के श्रीचरणों में उनकी दीक्षा की रजत जयन्ती पर शत-शत वंदामि-वंदामि-वंदामि।

॥श्रीगुरवे नमः॥

१. चिन्ता की कोई बात नहीं.....

सर्दी में विहार चल रहा था। विहार करते हुए जब रात्रिविश्राम हेतु रुके तो रुकने के लिए टिन शेड वाले कमरे मिले। देखते ही सभी के माथे पर चिन्ता की रेखाएँ खिंच गई। इतनी भारी सर्दी में इस जगह यह लम्बी रात कैसे निकालेंगे। पूज्य आर्यिकाश्री तो चटाई भी नहीं लेती हैं। कैसे क्या होगा ? ऐसा सोच-सोच कर सभी व्याकुल थे लेकिन पूज्य माँ तो प्रसन्न थीं। सब को आकुल-व्याकुल देखकर बोलीं-''तुम लोग इतनी चिन्ता नहीं करो, एक रात ही तो निकालनी है, कोई वर्षों तक यहाँ नहीं रहना है जो तुम सब इतनी चिन्ता कर रही हो।'' उन्हें बहुत ही प्रसन्नता हो रही थी कि आज निर्जरा का अवसर मिला है। क्योंकि माँ की धारणा ऐसी है कि रात में ठण्ड लगेगी तो नींद नहीं आयेगी और नींद नहीं आयेगी तो रातभर भगवद् स्मरण का अवसर मिलेगा, णमोकार-मंत्र की माला फेरेंगे, नहीं तो क्या सो जाते और खो जाते।

धन्य हो ! रजराशि और रत्नराशि में समानता रखने वाली हमारी पूज्य माँ, आप जैसे हम भी हर समय प्रसन्न रहें, इसी भावना से वन्दामि·····।

२. ध्यान रखो, दिल पर घाव नहीं होने पाये

बिहार करके यथास्थान पहुँचकर संघस्थ सभी सदस्य एक साथ बैठे थे। तभी **आर्यिका वृषभमती जी** -पूज्य आर्यिकाश्री के चरणों की तरफ देखकर बोली-''ओ हो ! माताजी ! आपके पैरों में इतने सारे घाव हो गये हैं, आप कैसे चलती हैं·····?''

पू.आर्यिकाश्री :''माताजी ! ये पैर के घाव हैं। ये तो भर जायेंगे और पैर में घाव होने पर शरीर नहीं बिगड़ेगा, थोड़ा-बहुत बिगड़ भी गया तो विश्राम करते ही ठीक हो जायेगा। लेकिन दिल पर घाव नहीं होना चाहिए। यदि दिल पर घाव हो गये तो समझो, भव बिगड़ जायेगा, संसार-सागर में भटक जाओगे, इसलिए दिल पर घाव न होने पाये, इसका ख्याल रखो।''

धन्य हैं पूज्य आर्यिकाश्री जो सदैव, हर क्षण, हर पल अपने परिणामों को टटोलकर सँभालती रहती हैं और साथ में हमारे परिणामों को सँभालने के लिए हर कदम पर हमें जागृत बनाये रखती हैं।

निज के प्रति सतत जागरूक साधिका के चरणों में वन्दामि·····।

३. कभी धूप कभी छाँव

प्रसंग महाराष्ट- प्रांत का है। वासिम की तरफ जा रहे थे। स्थान दूर होने से दोपहर में ढाई बजे विहार कर दिया। धूप बहुत तेज थी लेकिन चलना अधिक था सो बिहार कर दिया। पूज्य आर्यिकाश्री को आज आहार में अन्तराय था। साथ में चलने वाले सभी सोच रहे थे कि बादल हो जायें। सभी अपने-अपने इष्ट की आराधना करते जा रहे थे कि कुछ तो हो जाये और सच्चे मन से की गई प्रार्थना सफल होती है। १-२ किलोमीटर चलते ही सभी की भक्ति रंग लायी, आकाश में चारों तरफ बादल ही बादल हो गये। छाया को देखकर सभी खुश हो गये·····तब पू. आर्यिकाश्री ने कहा-''अरे ! इसमें क्या हर्ष-विषाद करना, यह सब पुद्गल का परिणमन है। धूप हो या छाँव दोनों ही पुद्गल की पर्यायें हैं और पर्यायें कभी शाश्वत नहीं होती हैं, हमेशा नाश को प्राप्त होती ही हैं। इनमें समता रखो तो निर्जरा होगी। इसलिए समता परिणाम रखना चाहिए। संसार में धूप-छाया·····आदि सभी अस्थिर हैं, समदृष्टि बनोगे तभी कल्याण कर पाओगे।''

समदृष्टि बनाकर आचरण करने वाली पूज्य माँ के श्रीचरणों में साम्यभाव प्राप्त करने के लिए वंदामि·····।

४. अपन भी कई बार हिरण बने हैं

एक बार बिहार में ४-५ हिरण छलाँगें भरते हुए दिखे। साथ में चलने वाले हम सभी का मन उस तरफ आकर्षित हुआ। मैंने कहा-''अपन थोड़ा पास होते तो अच्छे से देख लेते'' और मैं देखने के लिए थोड़ा तेज चलने लगी तो पूज्य आर्यिकाश्री ने कहा-''क्यों माताजी ! तुम भी इसमें उलझती हो क्या?

अरे सोचो, क्या अपन कभी हिरण नहीं बने हैं ? क्या अपन ने हिरण बनकर छलाँगें नहीं भरी हैं ? अरे ''अपन भी कई बार हिरण बने हैं।'' और ये सभी क्रीड़ाएँ भी की हैं। फिर भी यही सब देखने में आतुरता, यह सब चक्षु-इन्द्रिय का विषय है। इन पाँच-इन्द्रियों के विषयों में उलझकर ही तो हम अब तक संसार में भटकते आ रहे हैं और यदि इनको देखते-देखते आयु का बंध हो गया तो हिरण ही बनना पड़ेगा, क्यों इनमें रीझते हो, लुभाते हो ? थोड़ा अपने को देखो।''

धन्य हैं हमारी पूज्य माता जो स्वयं विषयों से विरक्त रहकर हमें भी विषय-भोगों से हटाकर पतन के गर्त में गिरने से बचाती हैं और अन्तर्मुखी होने रहने की प्रेरणा देती रहती हैं।

ऐसी परमोपकारी माँ के चरणों में वंदामि·····।

५. फिर भी तृप्ति नहीं हुई....

पूज्य आर्यिकाश्री के तीन उपवास की पारणा का प्रसंग था सो आहार पर निकलते-निकलते मैं बहिनों को आहार के संदर्भ में कुछ समझाने लगी तो पूज्य आर्यिकाश्री कहने लगीं-''अरे माताजी ! तुम भी यह क्या कर रही हो, अरे ! अनंतकाल हो गया खाते-खाते फिर भी तृप्ति नहीं हुई। जबसे जन्म हुआ है तब से अब तक ४०-४५ बोरा गेहूँ खा लिये, इतने ही टीन घी खा लिया लेकिन यह पेट खाली का खाली ही है, कभी भरा ही नहीं और अपना मन भी नहीं भरा है। अब तो अपन साधु हैं। साधु को तो खाना पड़ता है। यह भूख कभी शान्त नहीं हुई है और ना होगी, फिर गः भरना है तो भर लेंगे किसी भक्ष्य पदार्थ से। उसके लिए अच्छे-बुरे का क्या विकल्प करना।''

धन्य हैं हमारी आर्यिकाश्री जी, जो हर समय अध्यात्म में ही रमण करती हैं, उसी अनुसार चर्या भी करती हैं और हमें भी तदनुसार रहने, चलने और सोचने के लिए कहती हैं।

ऐसी अध्यात्मरसिक आर्यिकाश्री के चरणों में नमन-नमन-नमन।

६. कषायों को दबाना सिखा दो

बिहार में १० किलोमीटर चलकर आये और लगभग दो घंटे तक एकासन से बैठकर सभी को **चौबीस ठाणा** का अध्ययन करवाया। अध्ययनोपरान्त पूज्य आर्यिकाश्री ने जैसे ही पैर लम्बे किये तो आर्यिका वृषभमती जी ने कहा- ''माताजी! आपके पैर दर्द कर रहे होंगे, थोड़ा दबा दूँ।'' तो पू. आर्यिकाश्री ने पैरों को सिकोड़ते हुए कहा-''नहीं माताजी ! पैर नहीं दबाओ वरन् कषायों को दबाओ। आप तो कषायों को दबाना सिखादो और कषायों को दबाना सीख जाओ तो कल्याण हो जायेगा। यह तो शरीर है, परमाणु कुछ यहाँ-वहाँ हो गये तो दुखने लगे। अभी यहाँ-वहाँ हो जायेंगे तो दुखना बन्द हो जायेगा। पुद्गल है और बिखरना मिलना पुद्गल का स्वभाव है।''

धन्य हैं पूज्य आर्यिकाश्री जो हर समय आत्मा पर ही दृष्टि रखती हैं और अपने विकारी भावों, कषायों को नष्ट करने के पुरुषार्थ में तत्पर रहती हैं।

अपने लक्ष्य के प्रति जागरूक पूज्य माँ के श्रीचरणों में वन्दामि·····।

७. मैं भी तो कुछ साधना करूँ

सम्मेदशिखर जी की यात्रा करके पूज्य आचार्यश्री विद्यासागर जी महाराज के दर्शनार्थ आ रहे थे। सर्दी का समय था। बिहार के दौरान पू. आर्यिकाश्री के पैर छिल गये थे, घाव भी बन गये थे, बिवाइयाँ फट गयी थीं, सो उनसे खून भी निकलने लगा था। ऐसी परिस्थिति में चलने से पैरों में सूजन भी आ जाती थी। रात्रि विश्राम के समय ब्र.बहिनें अथवा श्राविकायें कभी थोड़ी सी मलाई लगा देती थीं या कभी हल्दी लगा देती थीं। ऐसा ही १५-२० दिन से चल रहा था। एक दिन गिट्टियों वाला मार्ग मिला। लगभग १० किलोमीटर तक रास्ता पूरा ऊबड-खाबड़ ही था। फिर भी पू. आर्यिकाश्री साम्यभाव से सौम्यमुद्रा पूर्वक उस पर चलती रहीं। पैरों से खून निकलता रहा, जोर पड़ने के कारण अंदर से मांस झलकने लगा। जब विश्राम के स्थान पर पहुँचे तो संघस्थ सभी ने सोचा, 'थोड़ा सेक कर दें' पर पू. आर्यिकाश्री ने मना कर दिया। कुछ भी वैयावृत्ति नहीं करवायी। रात्रि में बहिनों ने सोचा-'हल्दी लगा देते हैं' सो उसके

लिए भी मना कर दिया। प्रात:काल क्लास के पहले हम लोगों ने वैयावृत्ति न करवाने का कारण पूछा तो बोलीं-''मैं भी तो कुछ साधना करूँ, भाग्य से प्रतिकूलता मिली है, इसमें भी अनुकूलता मिला लेंगे तो फिर क्या·····पुन: पुन: कर्मों का ही बंध होता रहेगा और फिर-फिर असाता का उदय आता रहेगा। इसको अभी समता से सहन कर लेंगे तो पुन: असाता नहीं बँधेगी और पूर्व कर्म की निर्जरा भी होगी। अभी धीरे-धीरे सहन करते-करते ही तो आगे जाकर कर्म का क्षय कर पायेंगे। तुम लोगों को भी ऐसी ही साधना करनी चाहिए।''

सुनकर हम सभी मौन रह गये और विस्मित होकर सुस्मिता पू.आर्यिकाश्री को निर्निमेष निहारते रहे। थोड़ी देर बाद मुख से यही निकला कि पूज्य माँ धन्य हैं आपके भाव, धन्य है आपकी सहन शक्ति और अहो भाग्य है हमारा जो आपके श्रीचरणों में रहकर मोक्षमार्ग पर चल रहे हैं, हमें भी आप जैसी सहनशीलता प्राप्त हो, इसी भावना से आपके चरणारविन्द में प्रणाम·····।

८. आत्मा इन सबसे परे है

प्रसंग है कारंजा अतिशय क्षेत्र का, जब हम सभी मुनिद्वय श्री विनीतसागर जी व श्री चन्द्रप्रभसागर जी महाराज के दर्शन करके लौट रहे थे। पूज्य आर्यिकाश्री का अन्तराय था, दूसरे दिन चतुर्दशी थी सो माँ का उपवास भी था फिर भी किसी कारण से बिहार किया। गुरुकुल के दर्शन करके लगभग १०-१२ किलोमीटर चलना था। चलना प्रारम्भ किया ही था कि पू. आर्यिकाश्री को अतिसार की परेशानी हो गयी, ५-७ बार जंगल जाना पड़ा। फिर भी चलते रहे। नियत स्थान पर पहुँचने के बाद जब स्थानीय बहिनें आयीं तो उन्हें किसी श्रावक ने यह बात बता दी। उन्होंने पू. आर्यिकाश्री से पूछा-''माताजी ! आपको आज बार-बार जंगल जाना पड़ा है·····?'' यह सुनकर १-२ मिनट बाद पू. माताजी बोलीं ''बहिन ! पुद्गल के परमाणु हैं ये, कभी पतले होकर निकलते हैं तो कभी ठोस होकर निकलते हैं, इसमें हर्ष-विषाद की क्या बात है ? शरीर है यह। कब कैसा परिणमन हो जाय इसमें, कोई भरोसा नहीं, क्योंकि द्रव्य है यह और द्रव्य में पर्याय रूप से परिणमन तो होता ही रहता है·····लेकिन ध्यान रखो **आत्मा इन सबसे परे** है। उसकी चिन्ता करो।''

माताजी ! धन्य हैं आप और आपका अध्यात्म। अनुकरणीय है शरीर के प्रति आपकी निरीह वृत्ति, निस्पृहता और कर्मनिर्जरा के प्रति तत्परता।

हे भगवन् ! हमें भी ऐसी ही शक्ति प्राप्त हो !

इसी भावना से वन्दामि·····।

९. हम तो जन्मते ही मोटर साथ लाये हैं

नागपुर के एक श्रावक ने पू. आर्यिकाश्री से कहा कि ''हम आज नयी मोटर लाये हैं, आप आशीर्वाद दीजिये।'' सुनकर पू. आर्यिकाश्री बोलीं-''तुमने तो आज मोटर खरीदी है, हम तो जन्मते ही मोटर साथ लाये हैं। तुम्हारी मोटर भी जड़ है तो हमारी मोटर भी जड़ है। तुम्हारी मोटर भी खराब होती है तो तुम सुधरवाते हो, हमारी मोटर भी खराब होती है, हम भी सुधरवाते हैं। तुमभी पेट-ोल डलवाते हो, हम भी पेट-ोल डलवाते हैं, तुम्हें भी अपनी मोटर यहीं छोड़कर जाना पड़ेगा और हम भी अपनी मोटर यहीं छोड़ जायेंगे, एक जैसी ही है। बस, एक अंतर है कि तुम्हारी मोटर तुमसे दूर रहती है और हमारी मोटर २४ घंटे हमारे पास रहती है।'' सुनकर सभी श्रावकों को हँसी आ गयी। वे बोले-''माताजी! आपकी बातें सुनकर हँसी भी आ रही है और उनसे वैराग्य भी झलक रहा है। आप धन्य हैं और धन्य है आपकी विचारधारा जो हर समय लौकिकताओं के बीच रहकर भी अध्यात्म के साथ ही रहती हैं। आप अपने लक्ष्य के प्रति हरक्षण जागरूक रहती हैं।''

ऐसी आध्यात्मिक साधिका के श्रीचरणों में वन्दामि·····।

१०. आज मेरी भी परीक्षा है

प्रसंग है सर्दी के मौसम का। विहार चल रहा था। एक दिन विहार करते-करते ऐसे स्थान पर रात्रि-विश्राम के लिए पहुँचे जहाँ ८-१० बड़ी-बड़ी खिड़कियों वाला हॉल मिला, एक छोटा कमरा भी था। सभी ने पू. आर्यिकाश्री से निवेदन किया कि आप कमरे में सो जाइये क्योंकि आपको चटाई नहीं ओढ़ना है। तो आपने मना कर दिया, बोली-नहीं, आज तो मुझे अवसर मिला है निर्जरा

का। शरीर से निस्पृहता की परीक्षा है और मैं इसमें भी पीछे हट जाऊँ, नहीं, **आज मेरी भी परीक्षा** है भेद-विज्ञान की। आत्मा अलग है शरीर अलग है, आज प्रयोग में होगा तो समझ में आयेगा।'' सुनकर सभी मौन रह गये। बहिनों ने सोचा, चलो अपन खिड़कियाँ बन्द करवा देते हैं, तो बोलीं, ''नहीं, यदि तुम लोग खिड़कियाँ बंद करोगे तो फिर मैं बाहर खुले बरामदे में जाकर सो जाऊँगी।'' पू. आर्यिकाश्री की दृढ़ता को देखकर संघस्थ आर्यिकाएँ और बहिनें सभी उनके साथ बाहर ही खुले हॉल में सोये।

धन्य हैं पूज्य माँ, जो आदर्शमय जीवन जीकर जगत् की आदर्श बनने वाली हैं, उनके चरणों में वन्दामि·····।

११. इनमें क्यों उलझना

एक बार कुछ श्रावक गोत्र, जाति·····आदि को लेकर अपनी-अपनी बातें कहने लगे। वे जिस-जिस गोत्र वाले थे उस-उस गोत्र को बड़ा बता रहे थे, अच्छा बता रहे थे, मुख्य और श्रेष्ठ बता रहे थे। पू. आर्यिकाश्री उनकी बातें सुनती रहीं·····पूरी चर्चा सुनने के बाद बोलीं-''ये गोत्र, वंश, जाति, रंग, रूप, संहनन, संस्थान·····आदि सभी शरीर के आश्रित हैं, आत्मा में ये सभी नहीं हैं। आत्मा में न गोत्र है, न जाति है, न नाम है, कुछ नहीं है····इन सभी बातों में उलझकर आत्मा की हानि मत करो, धर्म नहीं छोड़ो। मरने के बाद ये सभी यहीं रह जायेंगे। इसलिए इन सबके पीछे संक्लेश परिणाम करके अपना अकल्याण मत करो, मेरा तो यही सुझाव है।''

पू. आर्यिकाश्री का मन्तव्य सुनकर उनकी आत्मा द्रवित हो गयी। वे सभी विवाद छोड़कर सामंजस्य बनाकर अभिमान से हटकर विनय-भाव से वीतराग भगवान के गोत्र वाले बन गये।

१२. धन्य है आपका आध्यात्मिक बल

प्रसंग है **पू.गुरुमती माता जी**·····आदि ४७ आर्यिकाओं से मिलन का। विहार करते-करते पू. आर्यिकाश्री के पैर बहुत ही कट-फट गये थे। उनके

कटे-फटे पैर देखकर एक आर्यिका ने कहा-''ओ माताजी ! देखो तो आपके पैर कैसे हो गये हैं, कुछ मल्हम तो लगवा लो''-तो पू.माताजी बोलीं-''अरे माताजी! ये कटे-फटे क्या हैं, उस स्थान के कुछ पुद्गल-परमाणु निकल गये तो स्थान खाली हो गया है अर्थात् कट-फट गया है। अभी कुछ पुद्गल-परमाणु आ जायेंगे तो फिर भर जायेगा और ऐसा होता ही रहता है। बात रही मल्हम की तो समता रूपी मल्हम हो तो लगा दो।'' सुनकर आर्यिका जी मौन होकर पू. आर्यिकाश्री को देखती रहीं·····फिर बोली, ''धन्य हो माताजी आप, इतना आध्यात्मिक बल आपको कहाँ से मिला है ! हमें भी आशीर्वाद दो ताकि हमारे अंदर भी आप जैसा साहस आये, हम भी सहिष्णु बनें·····इसी भावना से आपको ''कोटि-कोटि वन्दन, वन्दन, वन्दन·····।''

१३. अच्छा है, किसी बहाने से तो छूटा

प्रसंग है दक्षिण यात्रा का। घाटलाड़ली गाँव में आहार होना था। प्रात:काल से ही पूज्य माँ का स्वास्थ्य नरम-गरम था। पानी की कमी महसूस हो रही थी। एक कृषि फार्म में सभी का आहार एक साथ हुआ। पू.माताजी ने आहार में घबराहट होने और बार-बार गला खिंचने अर्थात् उबाकी आने से जल्दी ही अंजुलि छोड़ दी।·····आहारोपरान्त सभी ने कहा-''माताजी ! आपने इतनी जल्दी अंजुलि क्यों छोड़ दी ? थोड़ा मुनक्का लेकर या मक्का के फूला लेकर पानी तो पी लेते, ताकि शरीर में पानी की पूर्ति हो जाती, थोड़ा नीबू का रस ले लेते·····।'' सुनकर माँ बोली-''जब अन्दर वाला मना कर रहा है तो मैं क्यों खाऊँ और चीज भी क्यों बिगाडूँ। अच्छा है, इसी बहाने से छूटा। नहीं तो कहाँ छोड़ते हैं हम और छोड़ भी देते हैं तो तुम सभी विकल्प करते हो। स्वास्थ्य के बहाने से ही सही, छूट तो गया।''

आप धन्य हो माँ ! जो निरंतर यही सोचती रहती हो कि कैसे-न-कैसे हमारा भोजन छूट जाये क्योंकि खाना आत्मा का स्वभाव नहीं है, विभाव है और विभाव-परिणामों को तो छोड़ना ही है तभी तो स्वभाव में आ पायेंगे।

हमारे भी आपके जैसे अनेषण भाव बनें -

इसी भावना से वन्दामि·····।

१४. पूरे शरीर में

संदर्भ नागपुर जाते समय का है। ७ किलोमीटर चलकर नागपुर पहुँचना था, बीच में थोड़ा ऊपर चलकर पहाड़ी पर शौच के लिए गये, उतरते समय ढलान में पू. माताजी फिसल गयीं तो सभी ने पूछा-''आपको कहाँ लगी?'' हाथ-पैर छिल गये थे। पू.माताजी बोलीं-''हाँ लगी है।''.....''कहाँ लगी है''.....तो बोलीं ''पूरे शरीर में''। सुनकर सभी हँसने लगे, वे स्वयं भी हँस रही थीं, सभी को उदास न करके चिंता से हटाकर संक्लेश मुक्त कर दिया। बाद में स्थान पर आकर मैंने पूछा-''आपने ऐसे हँसी में क्यों टाल दिया ?'' ....तो बोलीं-''यदि मैं उदास होकर चेहरा उतारकर बताती कि यहाँ लगी है, यहाँ लगी है, तो अभी सब दौड़-धूप करते। इधर-से-उधर आते-जाते तो इसमें कितनी हिंसा होती है और सबको विकल्प भी होता। इन सब पापों से बचने के लिए ही मैंने हँसकर कह दिया, हाँ लगी है।''

धन्य हो माताजी आप जो 'हाँ, लगी है' कहकर अपने सत्य-महाव्रत का भी पालन कर लिया और 'पूरे शरीर में' कहकर सब को चिंता से रहित भी कर दिया। वेदना तो पूरे शरीर में ही होती है।

इस प्रकार आपने अपने व्रतों का भी निर्दोष पालन कर लिया और पापारंभ से बचकर असाता को भी साता में बदल दिया। हम भी इसी प्रकार कर्म-बंध से बचें, इसी भावना से श्रीचरणों में वन्दामि.....।

१५. आप कहाँ के हैं ?

प्रसंगवशात् पू. माताजी ने कहा कि मेरी ये पाँच आर्यिकाएँ बुंदेलखण्ड की हैं। सुनकर श्रावक ने पूछ लिया और आप कहाँ की हो ? तो पू. माताजी ने कहा-''मैं भारत की हूँ और भारत की ही नहीं विश्व की हूँ क्योंकि साधु किसी गाँव या घर का नहीं होता है। सारे गाँव अपने हैं और सारे घर अपने हैं। साधु को कभी एक गाँव और एक घर से मत बाँधना।''

श्रावक - माताजी ! अभी आपने ही तो अपनी ५ आर्यिकाओं को प्रान्त से बाँधा था। फिर ऐसा क्यों कहा ?

पू. आर्यिकाश्री - ''हम अनेकान्तमयी धर्म को मानते हैं जहाँ व्यवहार और निश्चय दोनों नयों से कथन होता है। दूसरों के साथ व्यवहार का प्रयोग और स्वयं के लिए निश्चय-नय का प्रयोग तुम भी किया करो, कभी संक्लेश नहीं होगा।''

सचमुच माताजी ! आपकी तो मेधा और महिमा न्यारी ही है और जीवनचर्या भी निराली ही है। आपकी बातें एकदम समझ में नहीं आती हैं लेकिन उलझनों को स्थायी समाधान प्रदान करती हैं।

हमें हमेशा-हमेशा आगमोक्त समाधान मिलते रहें, इसी भावना से आपके चरण-कमलों में कोटि-कोटि वन्दामि·····।

१६. उनके बराबर नहीं, तो थोड़ा ही कर लें

पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के आहार-विहार से सम्बन्धित प्रसंग है। आर्यिका वृषभमती जी पू. आर्यिकाश्री से बोलीं-''माताजी ! आचार्यश्री शाहपुर गये थे और अमुक-अमुक स्थान पर आहार हुए·····आदि-आदि।'' सभी बातें बड़ी प्रसन्नता पूर्वक बताने लगीं। सुनकर पू. आर्यिकाश्री एक दो मिनट मौन रहीं, फिर बोलीं-''क्या माताजी ! आप इतनी गंभीर वृत्ति वाली होकर भी शाहपुर से इतना मोह रखती हो। अरे ! विचार तो करती कि तीन लोक में कोई ऐसा स्थान नहीं है, जहाँ अपन ने जन्म नहीं लिया है। ६६३३६ भवों में कहाँ-कहाँ जन्म नहीं लिया, अब तो यह सोचो कि मुझे इन स्थानों में, भवो में जन्म ही न लेना पड़े।'' सुनकर एक ब्र. बहिन ने कहा-''माताजी! थोड़ा तो आ ही जाता है।'' तो पू. आर्यिकाश्री ने गुरुवर्य आचार्यश्री का उदाहरण सुनाया। अजमेर में जब उनके परिवार वाले आये थे दर्शन करने के लिए तब ७-८ दिन तक आचार्यश्री ने उनको आँख उठाकर भी नहीं देखा। सभी परिवार वाले बहुत विकल हो रहे थे तो किसी बुद्धिजीवी ने एक उपाय बताया कि आप प्रवचन के बाद कन्नड़ भाषा में भजन गाना, वो देख लेंगे और हुआ भी ऐसा ही। सोचो, जब हमारे आचार्यश्री इतनी बड़ी साधना करते हैं, हम उनकी कोई सेवा, वैयावृत्ति नहीं कर सकते, आहार नहीं दे सकते तो क्या हम उनके अनुकूल भी नहीं चल सकते हैं अर्थात् उन्होंने जो मार्ग बताया है उस रूप चर्या करते

हैं तो हम भी उनकी जैसी धारणा वाले होकर उनके अनुसार तो चल सकें। चलें, **उनके बराबर नहीं, तो थोड़ा तो कर लें।** मेरी तो ऐसी भावना है फिर तुम्हारी मर्जी....।''

धन्य हैं माताजी आप और आपका गुरु-चर्या के प्रति बहुमान और तदनुसार आचरण, जो निश्चित रूप से आपको मंजिल तक पहुँचायेगा।

श्रीचरणों में वन्दामि....।

१७. आखिर क्या है यह.....

एक दिन रास्ते में चलते-चलते मैंने पू.आर्यिकाश्री से पूछा- ''माताजी! समझ में नहीं आता कि दिमाग में ऐसा क्या है जो यहाँ-वहाँ की बातें और पाठ स्तुति.....आदि जितना-जितना याद करो सब कहाँ इकट्ठा होता जाता है और जब याद करो तब याद भी आ जाता है। आखिर यह क्या है।'' पू. आर्यिकाश्री बोलीं-''अरे माताजी ! इसी से तो कर्म की सिद्धि होती है कि कर्म का अस्तित्व भी कुछ है। यही कर्म है। यही जीव का ज्ञानगुण है। इसी से तो आत्मा के ज्ञान गुण की भी सिद्धि होती है। क्षायोपशमिक ज्ञान है। घटता-बढ़ता रहता है, स्थिर नहीं रहता है। यही कर्म अदृश्य रूप से संसार की लीलाएँ दिखा रहा है।.....इस कर्म के बारे में सोचो-समझो, विचार करो और अपने परिणामों को सँभालो।''

१८. नीति तो यही है !

एक बार एक ब्र. भैया जो वर्षों से पूज्य आर्यिकाश्री से परिचित थे वे १०-१५ वर्ष बाद पू. आर्यिकाश्री के दर्शन करने आये तो पू. माताजी को चर्चा करते देखा, सुना।.....सुनकर कहने लगे कि ''माताजी ! पहले आप बिल्कुल नहीं बोलती थीं, अब तो आप अच्छा बोलने लगे हो।''

सुनकर पू. आर्यिकाश्री बोलीं-''हाँ भैया ! **नीति तो यही है** कि जब बड़े हैं, बोल रहे हैं, तो हम छोटों को नहीं बोलना चाहिए और बड़ों के सामने यदि छोटे बोलते हैं तो डूब जायेंगे और बड़ों के जाने के बाद भी यदि छोटे

नहीं बोलते हैं तो भी डूब जायेंगे, इसीलिए मैंने बोलना शुरू कर दिया है।'' पू.माता जी का नीतिपूर्ण उत्तर सुनकर ब्र. भैया बोले-''माताजी ! मैं तो सोचता था कि आपको कुछ नहीं आता है- इसीलिए आप नहीं बोलते, पर मैं तो गलतफहमी में रहा, आप तो विनय गुण से परिपूर्ण होने के कारण नहीं बोलते थे। धन्य हैं माताजी आप-आज मुझे विनय तप को इतनी सूक्ष्मता से आचरित करने वाली आप जैसी महान् विभूति के दर्शन हुए हैं, मुझमें भी ऐसी ही विनय प्रकट हो, इसी भावना से आपके श्रीचरणों में बारम्बार वन्दामि·····।

१९. अनन्त बार इसी में उलझे हैं

महाराष्ट- बंजारी गाँव में ब्र. विजयभैया एक नारियल और कमण्डलु बनाने का सामान लेकर आये। हम लोगों को दिखाया। नारियल देखकर मैंने कहा-''इसका बहुत अच्छा कमण्डलु बनेगा।'' सुनकर पूज्य माताजी ने कहा कि-''माताजी ! तुम भी कहाँ इन उपकरणों में उलझती हो, ये सभी बाह्य उपकरण हैं। आत्मकल्याण के लिए इनकी कहाँ आवश्यकता है ! अरे अपन अनन्त बार इन्हीं उपकरणों में उलझते रहे हैं तभी तो सुमेरु पर्वत के बराबर पिच्छी-कमण्डलु के ढेर लग गये और हम यहीं के यहीं हैं। संसार में भ्रमण कर रहे हैं। अब तो संभल जाओ, समझ जाओ- साधुपना प्राप्त करना बहुत दुर्लभ है। सूक्ष्म दृष्टि से साधुपना बनाये रखने की सोचोगे तब कहीं स्थूलदृष्टि से साधुपना आ पायेगा, हमेशा माला फेरा करो कि मैं आर्यिका हूँ, मैं आर्यिका हूँ·····तो फिर इन राग-रंग से बच पाओगी।''

पू. माताजी ने अध्यात्म की गोली खिलाकर रागरूपी बुखार को उतारा। फिर बोलीं -''माताजी ! बुरा नहीं मानना लेकिन वास्तविकता तो यही है।''

पल-पल निज की ओर ले जानी वाली आध्यात्मिक रसिया पूज्य माँ के चरणों में वन्दामि·····वन्दामि·····वन्दामि !

२०. फिर क्यों खटपट हो

प्रसंग है आर्यिका संघ से मिलन का। एक आर्यिका जी ने अपने मन का विकल्प शान्त करने के लिए पू. आर्यिकाश्री से कहा कि माताजी ! आज

हमारी अमुक माताजी और अमुक ब्र. बहिन से किसी कारणवशात् खटपट हो गयी है जिससे आर्त्त-ध्यान रूप परिणाम हो रहे हैं। आप मुझे उपाय बताइये ताकि मैं संक्लेश परिणामों से बच सकूँ।

पूज्य आर्यिकाश्री - माताजी ! मेरे विचार से तो आर्त्तध्यान रूप परिणाम कोई करवा नहीं सकता है। जब हम स्वयं उस रूप विचार करने लगते हैं तो परिणामों में संक्लेश होने लगता है। विचार करो-मोक्षमार्ग में हमारा खाना-पीना, चलना, उठना-बैठना, वस्तुओं का लेना-देना·····प्रत्येक क्रिया पराधीन है। फिर हमारी आपस में **क्यों खटपट हो,** हमारा कुछ भी नहीं है। सब श्रावक दे रहा है फिर हम क्यों खटपट करें। तिलमात्र भी हमारा नहीं है फिर हम अपना मन क्यों बिगाड़ें, अपने परिणाम खराब क्यों करें। जिन द्रव्यों के निमित्त से संक्लेश होता है उनको छोड़ ही देना चाहिए। हम उनसे चिपटे रहते हैं और भाव खराब करके भव भी खराब कर लेते हैं। अनन्त बार सब कुछ खाया-पिया, लिया-दिया, फिर भी तृप्ति नहीं हुई, सोचो, हम स्वयं कितनी बार अनार-मौसमी, सेवफल बने हैं पर क्या संतुष्टि हुई है ? याद करो, नरक-तिर्यंच में हमने पराधीनता में भूख-प्यास को सहन किया है परन्तु आत्मकल्याण के लिए सहन करने में हम पीछे हट जाते हैं। हमारे विचार से ज्यादा खटपट तो गलतफहमी से होती है। अत: माताजी आप सकारात्मक सोच रखा करो तो फिर किसी से भी कुछ नहीं होगा और संक्लेश से भी बच जाओगी। संक्लेश-परिणाम नहीं हुआ तो समझना सबसे बड़ा धर्मध्यान किया है।

सुनकर आर्यिकाजी बोलीं - पू. माताजी ! आपने जो बताया वास्तव में वो ही सही है, अब मैं भी आपके निर्देशन के अनुसार ही चर्या बनाऊँगी ताकि मैं भी आर्त्तध्यान से बच सकूँ।·····वन्दामि·····।

२१. एक रात ही तो निकालनी है

सम्मेदशिखर जी से विहार करके पंचतीर्थ की यात्रा करते हुए राजगृही क्षेत्र पर पहुँचने के पहले एक जगह रात्रि-विश्राम हेतु रुके। साथ वाले रास्ता भटक गये अत: वे हम लोगों के पास नहीं पहुँच पाये और जहाँ हम लोग रुके थे, वहाँ आसपास कुछ भी नहीं था। एक जीर्ण-शीर्ण स्कूल में २-४ टाट-

पट्टी पड़ी थीं। वहीं समीप में एक किसान का घर था। उन लोगों ने अपनी सामर्थ्यानुसार व्यवस्था बनायी। हम पाँच आर्यिकाओं के लिए खजूर की चटाई ले आये पर पू. आर्यिकाश्री के चटाई का त्याग है सो हम लोगों ने कहा, कहीं बेंच या तख्त मिल जाये या लकड़ी का पाटा, पटिया ही मिल जाये तो अच्छा रहेगा ! गाँव वालों ने प्रयास भी किया परन्तु लकड़ी की ३ बल्ली मात्र मिली·····गोल होने की वजह से उन पर सोया भी नहीं जा सकता था फिर भी पू. माताजी बोलीं·····''नहीं, इन्हीं को एकसा जमा दो, मैं सो जाऊँगी।'' सभी को दु:ख हो रहा था, परन्तु उन बल्लियों पर पू.आर्यिकाश्री के सोने का हेतु भी समझ में आ रहा था कि यदि अभी वे जमीन पर सोयेंगे तो सभी को जमीन पर सोना पड़ेगा। सभी संघस्थ सदस्यों का ध्यान रखते हुए बिहार प्रान्त की सर्दी में भी वे उन बल्लियों पर ही सोने को तैयार हो गयीं। उन किसानों ने भी दुखी होते हुए कहा कि आप इन पर कैसे सोयेंगे ? तो पू. आर्यिकाश्री मुस्कुराते हुए प्रसन्नता से बोलीं ''दादाजी ! चिन्ता नहीं करो, **एक रात ही तो निकालनी है,** निकल जायेगी और फिर नींद आ जायेगी तो भान ही नहीं रहेगा किस पर सो रहे हैं। यदि नींद नहीं आई तो अच्छा है भगवान का नाम लेने को मिलेगा।'' उत्तर सुनकर सभी नमस्कार करके विस्मित से देखते रहे और फिर अपने स्थान पर चले गये। हम सभी अपनी पूज्य माँ को निर्निमेष निहारते रहे।

वात्सल्य की विग्रह, नियमों में दृढ़, प्रति पल भगवान के सुमरण में समर्पित, हर श्वास में बारह-भावना का चिन्तन करने वाली सजग जागरूक साधिका के संदर्भ में क्या कहूँ, क्या बोलूँ, शब्द भी काँप कर रह गये। मात्र भगवान से प्रार्थना करते रहे कि हमें भी ऐसा ही आत्मिक बल मिले कि हम भी अपनी पूज्य माँ का प्रसन्नतापूर्वक अनुसरण कर सकें.....ताकि यह संसार सागर सूख जाये, इसी भावना से प्रणाम.....प्रणाम.....प्रणाम !

२२. जैसा सुना वैसा पाया

जयपुर के एक श्रावक पू. आर्यिकाश्री के दर्शन करने आये। उस समय विहार चल रहा था·····विहार में पू. माताजी से सम्यग्दर्शन के संदर्भ में चर्चा करते रहे·····प्रसंगवशात् पू. आर्यिकाश्री ने बताया कि हम सरागी देवों को मात्र

किसी के कहने से नहीं पूजें, वरन् स्वरूप समझकर नहीं पूजेंगे तो कभी विचलित नहीं होंगे। पूजा-अभिषेक की पद्धति पर चर्चा छिड़ी तो पू. माताजी ने कहा- ''भैया ! पूजा-अभिषेक की पद्धतियों पर कभी उलझना नहीं चाहिए क्योंकि पूजा-अभिषेक की पद्धतियों से सम्यग्दर्शन का कोई सम्बन्ध नहीं है। सम्यग्दर्शन का संबंध तो तत्त्वार्थ के श्रद्धान से है, आत्मा के परिणामों से है।'' इस प्रकार चर्चा करते-करते स्थान पर पहुँच गये। वहाँ पू. माताजी के पहुँचते ही श्रावकों ने बैठने के लिए तख्त लगाया तो उस पर धूल-ही-धूल देखकर एक भैया रूमाल से पोंछने लगे तो माताजी ने मना कर दिया। माताजी के मना करने पर वे कारण पूछने लगे। तब माताजी ने कहा- ''अभी इससे पोंछेंगे, फिर इसे साबुन लगाकर धोयेंगे तो हिंसा होगी और हिंसा में निमित्त मैं बनूँगी।'' सुनकर वे सोचने पर मजबूर हो गये। तभी किसी ने कहा-''माताजी ! मंदिर की छत पर बैठ जाइये। यहाँ पर छाया है, सो माताजी ने कहा, ''नहीं, भैया ! शिखर की छाया में नहीं बैठते हैं क्योंकि शिखर भी नवदेवता में से एक देवता है। तो हमें पाप लगेगा।''

सारी चर्या देखकर और चर्चा सुनकर जयपुर से आये वे श्रावक बोले- ''माताजी ! सच्चाई बताऊँ, मैंने पूज्य मुनिश्री क्षमासागर जी के मुख से सुना था कि आर्यिका विज्ञानमती माताजी एक श्रेष्ठ साधिका हैं, उनका ज्ञान का क्षयोपशम भी बहुत है और चारित्र का क्षयोपशम भी बहुत है। मैं तभी से आपके दर्शन करना चाहता था। आपसे चर्चा करना चाहता था। आज आपका दो, ढाई घंटे का सान्निध्य पाकर मुनिश्री के वचन मुझे यथार्थ लगे। सच ! आज मैं कितना आनन्दित हूँ, जड़ शब्दों से नहीं कह सकता हूँ। आपकी निर्मल छवि मेरे मानसपटल पर अमिट रंगों से अंकित हो गयी है, मेरी हर श्वास हर क्षण आपके चरणों की सदैव वन्दना करती रहे, इसी भावना से सविनय सादर वन्दामि।

२३. कुछ-कुछ और

संदर्भ ग्रीष्मकालीन विहार का है। मेरा स्वास्थ्य नरम-गरम हो रहा था। अन्तराय भी हो गया था आहार में लेकिन रुकने जैसा स्थान न होने के कारण विहार करना ही पड़ा। २-३ किलोमीटर ही चले थे कि मुझे घबराहट होने लगी।

जी मिचलाने लगा। पू. माताजी ने साथ में चलने वालों से पूछा- ''तुम्हारे पास कुछ है नीबू, लौंग, पिपरमेंट ?'' परन्तु कुछ भी नहीं मिला। तभी हम एक नीम के वृक्ष की छाया में विश्राम हेतु बैठ गये। वहाँ आसपास सूखी निबौलियाँ पड़ी थीं। उन्हें देखकर पू. आर्यिकाश्री ने बड़ी सहजता से कहा- ''तुम तो ये निबौली सूँघ लो, ठीक हो जाओगी। माताजी ! इस समय सोचो कि यह घबराहट शरीर में हो रही है, आत्मा में नहीं। शरीर अलग है, आत्मा अलग है·····और तुम तो बहुत कर्मनिर्जरा करने के लिए तत्पर रहती हो, बातें भी करती हो फिर जब प्रतिकूलता आ गयी है, कर्मनिर्जरा का निमित्त मिला है तो क्यों घबरा रही हो? चलो, उठो, अभी ८-९ किलोमीटर और चलना है, बैठने से कैसे काम चलेगा।''

पू. आर्यिकाश्री की तपोमयी, साधनामयी देह से स्पर्शित उन निबौलियों के सूँघने तथा अध्यात्म वचन रूपी अमृत का पान करते ही घबराहट न जाने कहाँ गयी, पता ही नहीं चला। ८-९ किलोमीटर का विहार कैसे हो गया, समझ में ही नहीं आया। दूसरे दिन आहार में भी सहजता ही महसूस हुई। ऐसी परम वात्सल्यमयी माँ की वरदानी छाँव तले रहकर यदि मैं अपने लक्ष्य को पा जाऊँ तो कोई बड़ी बात नहीं है।

एक जीवन तो क्या जब तक मुक्ति न मिल जाये तब तक पूज्य माँ का उपकार कभी विस्मृत नहीं हो सकता, ऐसी परमोपकारी माँ के चरणों में सविनय वन्दामि·····।

२४. न बाहर से आयी, न बाहर गयी

प्रसंग है तेंदूखेड़ा वर्षायोग का। पू. आर्यिकाश्री के हाथ में बहुत दर्द हो रहा था, दर्द ऊपर से नीचे सूजन के साथ सर्पाकार हो रहा था। ३-४ दिन हो गये थे परन्तु दर्द कम नहीं हो रहा था। अनन्त चतुर्दशी के दिन प्रवचन के बाद जब जल-विहार का जुलूस निकल रहा था तब हम लोगों ने डॉ. को बुलवाया तो समाज के ४-५ डॉ. एक साथ आ गये। जुलूस के बीच में से डॉ. साहब को आते देखा तो समाज के सभी लोग चिंतित हुए। जल-विहार के जुलूस को बीच में से ही वापिस लेकर आ गये। इधर जब डॉ. ने आकर देखा तो पू.

आर्यिकाश्री सहज, सामान्य, प्रसन्नवदन विराजमान दिखाई दीं, वेदना का कोई लक्षण नजर नहीं आ रहा था। फिर भी साहस करके डॉ. ने पूछा, ''माताजी! कौन से हाथ में दर्द हो रहा है?'' तो मुस्कुराते हुए पूज्य माँ ने दोनों हाथ सामने कर दिये और बोलीं-''आप डॉक्टर हो, देखकर बताओ कहाँ क्या बीमारी है।'' सुनकर डॉ. भी मुस्कुराते रह गये। थोड़ी सूजन देखकर डॉ. बोले-पानी से सेक कर दो, अमृतधारा लगा दो·····ठीक हो जायेगा। ·····बात आयी-गयी हो गई। लेकिन पू. आर्यिकाश्री को इस बात का बहुत दुख हुआ कि श्रीजी के जलविहार में ऐसा विघ्न उनके कारण आया तो उन्होंने नियम ले लिया कि मैं न तो कोई उपचार करवाऊँगी और न ही ३ दिन तक इसके बारे में सोचूँगी और न बताऊँगी।

तीन दिन तक सभी संघस्थ सदस्यों ने और समाज वालों ने भी पूछा पर इस संदर्भ में माताजी मौन रहीं। सूजन और स्पष्टत: दिखने लगी। ३ दिन पूरे होते ही सभी लोग लेप लगाने के लिए तथा और भी अन्य उपचार के लिए कहने लगे तब पू. माताजी ने कहा-''आठ-दिन तक देखती हूँ, ठीक नहीं होगा तो उपचार के संदर्भ में विचार करूँगी·····।'' शरीर के प्रति पू.आर्यिकाश्री की निस्पृहता से, वेदना को सहजता से सहन करने के परिणामों से और संकल्प के प्रति दृढ़ता से असाता साता में परिवर्तित हो गयी। ८ दिन के पहले ही सूजन और दर्द स्वत: ही समाप्त हो गये। ८ दिन होने पर फिर किसी आर्यिका जी ने कहा-''माताजी ! अब कुछ उपचार करवा लीजिये'' सुनकर **पू. आर्यिकाश्री बोलीं** - ''अरे ! माताजी ! यह सूजन जहाँ से आयी थी वहीं चली गयी, पुद्गल परमाणु बढ़ गये तो सूजन आ गयी, घट गये तो सामान्य दशा हो गयी। इसलिए घबराना नहीं चाहिए। यह पुद्गल का परिणमन है, शरीर में होता ही रहता है और जब तक कर्म हैं, तब तक यह सब होता ही रहेगा। जिस प्रकार सरोवर में लहरें उठती हैं और उसी में समा जाती हैं, न बाहर से आती हैं और न बाहर जाती हैं, उसी प्रकार यह सूजन शरीर के बाहर से नहीं आयी थी जो बाहर जाती। शरीर के भीतर से ही आयी थी तो गयी कहाँ, भीतर ही समा गयी।'' पूज्य माँ का चिन्तन सुनकर सभी हँसते हुए उनके चरणों में नतमस्तक हो गये।

हे भगवन् ! हम में भी ऐसी ही सहनशीलता आये, इसी भावना से पूज्य माँ का वन्दन, अभिवन्दन·····।

— द्वितीय खण्ड —

खट्टा-मीठा यथार्थ

१.	दु:ख भी मानव की सम्पत्ति है	३३
२.	अनुशासन-प्रियता	३४
३.	सजा बनी सभ्यता	३५
४.	सेवा से मिली मेवा	३७
५.	गुरुदर्शन बना संजीवनी	३८
६.	अनूठा नियम	३९
७.	अद्‌भुत दलिया	४०
८.	नींद नहीं आई तो अच्छा हुआ	४१
९.	आखिर रत्न कौन?	४३
१०.	आचरणात्मक सीख	४४
११.	अनोखी मनौती	४५
१२.	अतृप्त मोह	४७
१३.	अब क्यों न करूँ?	४९
१४.	समता रखो	५०
१५.	एक लौंग का मूल्य	५१
१६.	अनूठा सम्प्रेषण	५२
१७.	स्वाध्याय से वैराग्य दृढ़	५४
१८.	वीतरागी प्रभु ही दिखें	५४
१९.	मुझे स्वयं अनुभव है	५५
२०.	रुचि हो तो बन्धन बाधा नहीं	५६
२१.	पाँच वर्ष में भी	५८
२२.	भोगना तो अपने हाथ में है	५९
२३.	मुझे तो बाल-ब्रह्मचारिणी बनना था	६०
२४.	सभी कार्य पुरुषार्थ साध्य हैं	६१

१. दु:ख भी मानव की सम्पत्ति है

प्रसंग है भजन-प्रतियोगिता का। दिसम्बर २००७ ललितपुर में भजन-प्रतियोगिता का कार्यक्रम चल रहा था। समापन पर पू. आर्यिकाश्री ने आशीर्वाद रूप उद्‌बोधन पर स्वयं के बचपन की अनुभूति सुनाई.....।

''जब मैं छोटी थी, मैंने एक पुस्तक में भजन पढ़ा था। यद्यपि मुझे भजन गाना नहीं आता है, मुझे गाने में रुचि भी नहीं है। फिर भी उस भजन की पंक्तियाँ मुझे बहुत अच्छी लगी थीं और वे पंक्तियाँ समय-समय पर बहुत संबल भी देती हैं-भजन की पंक्तियाँ हैं-

''दु:ख भी मानव की सम्पत्ति है, तू क्यों दु:ख से घबराता है।
दु:ख आया है तो जायेगा, सुख आया है तो जायेगा॥
सुख जायेगा तो दु:ख देकर, दु:ख जायेगा तो सुख देकर
सुख देकर जाने वाले से, हे मानव ! तू क्यों भय खाता है.....
दु:ख भी मानव की सम्पत्ति है.....।''

इन पंक्तियों को पढ़ने के बाद मेरे जीवन में जब भी जो भी प्रतिकूलता आती तो मैं सोचती अब इसके बाद अनुकूलता आयेगी अत: मुझे प्रतिकूलता में संक्लेश परिणाम नहीं करना है, अपने परिणाम बिगाड़कर, अशुभ कर्म का बंध करके नरक-निगोदों में नहीं जाना है। इस अपूर्व दुर्लभ मनुष्य पर्याय को निरर्थक नहीं जाने देना है। और जब कभी अनुकूलता आती तो सोचती कि अब इसके बाद प्रतिकूलता आने वाली है अत: मुझे इस अनुकूलता में हर्ष नहीं करना है, क्षणिक सुख में प्रसन्न होकर मान कषाय की पुष्टि करके संसार की वृद्धि नहीं करना है।

इस प्रकार इन पंक्तियों के आधार से अपनी धारणा बनाकर मैं बचपन से आज तक हर अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में हर्ष-विषाद न करके साम्य-भाव बनाये रखने का पुरुषार्थ करती हूँ। काफी हद तक मुझे सफलता भी मिली है। मिलती आ रही है। फिर भी इतने मात्र में ही संतोष धरकर नहीं बैठ सकती हूँ। मुझे तो साम्य-भाव की पूर्णता को प्राप्त करना है और वह अवस्था जब कर्म से रहित हो जायेंगी अर्थात् सिद्ध बन जायेंगे तभी प्राप्त हो सकती है।''

आत्माभिव्यक्ति सुनकर सभी को अच्छा लगा।

धन्य हैं हमारी पूज्य माँ, जो बचपन से ही अपने परिणामों को सँभालती आ रही हैं और आत्मकल्याण हेतु कटिबद्ध हैं। साम्य भाव की साधना में तत्पर पू. आर्यिकाश्री के चरणारविन्द में संक्लेश परिणामों से हर पल, हर क्षण बचती रहूँ, इसी भावना के साथ कोटिश: वन्दामि·····।

२. अनुशासन-प्रियता

प्रसंग है अनुशासनप्रियता का.....। श्रावकों को पढ़ाई और समय की पाबंदी के संदर्भ में सुनाया.....।

''जब मैं तीसरी कक्षा में पढ़ती थी, अचानक एक दिन सूचना मिली कि कल प्रात:काल सात बजे से स्कूल लगेगा। सूचना सुनकर मैंने अपनी सहेली से पूछा कि सुबह सात कब बजते हैं ? सहेली ने कहा-''जब थोड़ा-थोड़ा अँधेरा रहता है, आकाश में तारे दिखाई देते हैं और घर में बच्चे·····आदि सभी सोये रहते हैं।'' सहेली की बात पर विश्वास करके धारणा बना ली कि मुझे समय पर स्कूल पहुँचना है। माँ ने शुरू से अनुशासन सिखाया था। समय पर जाना, समय पर खाना, समय पर पढ़ना, समय पर सोना, समय पर उठना सहज ही प्रवृत्ति में था। घर पर घड़ी थी नहीं, माँ भी अपने सभी काम प्रकृति के परिवर्तन देखकर ही किया करती थी। मैं भी रात्रि में धारणा बनाकर सोयी थी सुबह समय पर स्कूल पहुँचना है। अर्द्धरात्रि में नींद खुली तो उठकर बाहर आई। देखा, जैसी स्थिति सहेली ने बतायी थी वैसी ही दिख रही थी, सो हाथ-पैर धोकर तैयार हो गयी, फिर बस्ता उठाकर दरवाजा खोलकर स्कूल के लिए चल दी। निडरता पूर्वक गलियों में से होकर के स्कूल पहुँच गयी। वहाँ देखा तो स्कूल बंद है, ताला लगा हुआ है। आस-पास भी कोई नहीं दिख रहा है,आखिर क्या बात है ? २-५ मिनिट तक इधर-उधर देखा, कोई भी नहीं दिख रहा है तो थोड़ा डर सा लगने लगा। सोचा, चलो घर वापस चलते हैं। लेकिन अब मन में भय का भूत आ गया था। मुख्य सड़क से प्रकाश में से घर आने लगी, तभी एक गश्ती मिल गया। उसने सोचा-अभी आधी रात है और यह बच्ची ३ बजे कहाँ जा रही है। उसने मेरे पास आकर पूछा-बिटिया ! कहाँ जा रही

हो ? मैंने भी सहज ही कह दिया कि स्कूल आयी थी लेकिन स्कूल अभी बन्द है सो वापिस घर जा रही हूँ। वह पहचानता था सो उसने घर तक छोड़ दिया। घर आकर देखा-सभी दरवाजे खुले हैं, तो उसने आवाज देकर घर वालों को उठाया और कहा कि सेठजी ! कैसी नींद में सोते हो, बच्चों का इतना भी ध्यान नहीं रखते हो क्या ? जब माता, पिता को पूरी बात पता चली तो उन्होंने मुझे डाँटा और कहा कि सहेली ने मजाक की होगी। मुझे भी ऐसा लगा कि हाँ! हो सकता है, उसने मेरे साथ मजाक ही की हो।'' सुनकर श्रावकों ने प्रश्न किया कि आपको ऐसी मजाक करने वाली सहेली पर गुस्सा नहीं आया ?

पू. आर्यिकाश्री - नहीं, मुझे कुछ भी नहीं लगा। न उस पर गुस्सा आया, न माता-पिता पर कुछ रोष आया। बल्कि मैंने तो यह सोचा कि कितनी अच्छी है वह जिसने समय पर स्कूल जाने में मेरी सहायता की।

धन्य हैं पूज्य आर्यिकाश्री आप, जो बचपन से ही अपने आपमें अनुशासित रहीं और आर्यिका बनकर अपना पूरा जीवन अनुशासित बनाकर आत्मानुशासन में जाने का प्रबल पुरुषार्थ कर रही हैं। आपके श्रीचरणों में आप जैसी ही बनने की भावना लेकर बारम्बार वन्दन-वन्दन-वन्दन.....।

३. सजा बनी सभ्यता

प्रसंग चल रहा था कि बच्चों को असभ्य-अशिष्ट वचन बोलने से कैसे रोका जाये। इसी संदर्भ में पूज्य आर्यिकाश्री ने अपने बचपन की बात सुनायी।

''मैं तब ६-७ वर्ष की थी। घर में हम सभी भाई-बहिन आपस में खेलते-खेलते कभी-कभी एक दूसरे को गाली देते थे। हम लोगों की गाली रूप बातें सुनकर माँ हमें मना करती और कहती, बच्चो ! तुम लोग गाली मत दिया करो। गाली तो गन्दे लोग दिया करते हैं। इस प्रकार एक-दो बार समझा दिया, समझाने पर हम लोग भी याद रखते कि गाली नहीं देना है। लेकिन फिर-फिर माँ की बात भूल जाते और गाली देते। फिर माँ समझाती। किन्तु जब माँ के

बार-बार समझाने पर भी हमारी खोटी आदत नहीं सुधरी तो फिर माँ ने दण्ड व्यवस्था कर दी कि अब जो भी गाली देगा उसे णमोकार-मंत्र पढ़ना पड़ेगा। और वो भी एक गाली का १०८ बार णमोकार मंत्र पढ़ना। सजा सुनकर सभी बच्चे सहम गये क्योंकि अब तो माँ ने कड़क सजा दी है, उसे तो भोगना ही पड़ेगा। तब हम सब बच्चों ने अपनी राय मिलाली कि अब हम गाली नहीं देंगे। लेकिन आदतानुसार मुँह से गाली निकल जाती तो हम तत्काल ही णमोकार-मंत्र पढ़ना शुरू कर देते। अँगुलियों पर गिनते रहते थे कभी १० बार, कभी २० बार तो कभी एक साथ ५० बार पढ़ते·····इस प्रकार गिन-गिनकर १०८ बार णमोकार मंत्र पढ़ पाते थे। कभी-कभी २१६ बार भी पढ़ना पड़ता था। ऐसा मात्र दो तीन बार ही हुआ। उसके बाद तो अपने आप ही गाली देना छूट गया। इस प्रकार माता-पिता विधिपूर्वक संस्कार डालें तो बच्चे की हर खोटी आदत को प्रेम से धर्म के साथ जोड़कर सुधारा जा सकता है। बाद में, फिर हमारे यहाँ आर्यिका चन्द्रमती माताजी आयीं तो माँ हम सब भाई-बहिनों को उनके पास ले गयी। उनके प्रवचन में जब यह सुना कि ''पूर्व पुण्योदय से हमें बोलने की क्षमता मिली है और हम उस क्षमता का दुरुपयोग करते हैं तो भविष्य में हमें बोलने की शक्ति ही नहीं मिलेगी। यदि भाग्य से थोड़ी बहुत क्षमता मिल भी गयी तो तुतलाओगे, सही-सही उच्चारण नहीं कर पाओगे। और फिर जैसे ही बोलोगे, बोलते ही सभी तुम्हारी मजाक बनायेंगे, हँसी उड़ायेंगे।'' हम लोगों ने जब ये बातें सुनीं तभी से नियम ले लिया कि अब हम कभी जीवन में गाली नहीं बोलेंगे, अपशब्दों का उच्चारण नहीं करेंगे। उस समय का, बचपन में लिया गया नियम आज जीवन में भाषासमिति के रूप में यम रूप बन गया।''

प्रशंसनीय हैं हमारी पूज्य माँ जिन्होंने बचपन से ही कठोर-कर्कश, असभ्य-अशिष्ट वचनों पर लगाम लगाकर रखी और वह लगाम आज तक अनवरत रूप से बनी हुई है। क्वचित् कदाचित् किसी को डाँटती भी हैं तो भी उनके मुख से ऊँचा स्वर या असभ्य शब्द नहीं निकलते हैं। हम भी इनके चरणों में प्रणाम करते हुए यही भावना भाते हैं कि वचन-वर्गणाओं का कभी दुरुपयोग नहीं करें। ऐसे ही आशीर्वाद की आकांक्षा से बारम्बार वन्दामि·····।

४. सेवा से मिली मेवा

प्रसंग है पंचकल्याणक महोत्सव का। संत-सान्निध्य से जीवन में क्या-क्या परिवर्तन हो जाते हैं, बच्चे भी अपने आपको परिवर्तित कर लेते हैं।

हमारे यहाँ भी आचार्य धर्मसागर जी व आचार्य सन्मतिसागर जी महाराज का पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में पदार्पण हुआ। सभी नगरवासियों में मेले का बहुत उत्साह था। बच्चों में मेले·····आदि का कुछ विशेष ही उल्लास रहता है। हम भी बहुत दिनों से मेले में जाने की तैयारी कर रहे थे। माँ ने सभी बच्चों को नये कपड़े पहनाकर तैयार किया और मेले में घुमाने के लिए ले गयी, लेकिन मेला घुमाने के साथ-साथ माँ हमें आचार्य संघ के दर्शनार्थ भी ले गयी। वहाँ जाकर भाइयों से कहा-''जाओ, मुनिराजों के पैर दबाना·····वैयावृत्ति करना।'' और हम बहिनों को आर्यिकाओं के पास ले गइ और उनकी वैयावृत्ति करने को कहा।

एक दिन हमें आर्यिका चंद्रमती माताजी के पास ले गयी। हम उनके पैर दबा रहे थे तब उन्होंने हमारी शर्ट की तरफ नजर डालते हुए कहा कि-बेटा ! तुमने यह कौन-सी शर्ट पहन रखी है, तुम्हें पता है इसमें क्या चित्र बने हैं। मैंने सहजता से प्रसन्न होते हुए कहा-हाँ, माताजी ! इसमें मोर बने हैं। सुनकर वे बोलीं-बिटिया ! तुम्हें पता नहीं है क्या कि ऐसे जीवों की चित्रों वाली पोशाक पहनने पर हमें संकल्पी हिंसा का दोष लगता है। तब मैंने उनसे पूछा-माताजी ! वो कैसे ?

पू. माताजी - ''बेटा ! यह तुम्हारी शर्ट है, इसको जब धोते हैं, तब निचोड़ते भी हैं, कूटना से कूटते भी हैं, ब्रश भी फेरते हैं, मसलते भी हैं, साबुन लगाते हैं उस समय इसमें जो मोर·····आदि जीवों के चित्र बने हैं उन जीवों को कूटने, मसलने, रगड़ने, मारने का पाप लगता है और हम यह सभी कार्य संकल्प करके ही करते हैं तो हमें संकल्पी हिंसा का पाप लगता है। इस प्रकार हम यह बिना-प्रयोजन का पापास्रव कर लेते हैं।'' तभी से हमने माताजी के सामने संकल्प कर लिया था कि अब कभी ऐसे वस्त्र नहीं पहनेंगे।

इस प्रकार पूज्य आर्यिकाश्री को बचपन से ही अहिंसा धर्म को सूक्ष्मता से समझने का सौभाग्य मिला और आपने उसे अपने जीवन में उतारा। आज उसे ही अपने आचरण से व उपदेश से संपूर्ण जनमानस को बताने का पुरुषार्थ कर रही हैं। पू. आर्यिकाश्री के चरणों में कोटिश: वन्दामि..... वन्दामि..... वन्दामि।

५. गुरुदर्शन बना संजीवनी

प्रसंग चल रहा था कि क्या गुरुदर्शन से भी जन्म-जरा-मृत्यु रूपी रोगों से मुक्ति हो सकती है। तब पूज्य आर्यिकाश्री ने स्वयं की अनुभूति इस प्रकार बतायी.....।

मेरी दीक्षा को दो वर्ष ही हुए होंगे और दीक्षागुरु आचार्यकल्प श्री विवेकसागर जी महाराज की समाधि हो गयी। उनकी समाधि के बाद लगभग २-३ वर्ष तक लगातार मैं बीमार ही रही। पहले किशनगढ़ वर्षायोग में क्षयरोग से त्रस्त रही तो सिंगोली वर्षायोग में पीलिया, मलेरिया से ग्रसित रही.....बीमारी का उतार-चढ़ाव चलता ही रहा। जब रामगंजमण्डी वर्षायोग के बाद १९९० में पथरिया पंचकल्याणक के अवसर पर आचार्यश्री विद्यासागर जी महाराज के दर्शन किये तो एक अलग ही अनुभूति हुई और मैं पूर्ण स्वस्थता का अनुभव करने लगी। उस समय से १७-१८ वर्ष हो गये, मैं आज तक बीमार नहीं हुई हूँ। उन पुरानी बड़ी-बड़ी बीमारियों ने कभी पलटकर झाँकने का भी साहस नहीं किया। यह है गुरु-दर्शन का महत्त्व। यह तो मैंने शारीरिक रोगों से मुक्ति लाभ बताया है, गुरु का तो नामस्मरण ही कर्मक्षय करने में समर्थ होता है तो फिर दर्शन करने से जन्म-जरा-मृत्यु रूपी भवरोग से मुक्ति मिल जाये तो कोई आश्चर्य नहीं है।

गुरु बोलें या न बोलें, देखें या न देखें, आशिष दें या न दें हमने जितनी विशुद्धि से दर्शन किये हैं, नमस्कार किया है उतनी ही अशुभ वर्गणाएँ शीघ्रता से दूर भाग जाती हैं तथा शुभ/प्रशस्त वर्गणाएँ आने से सब कुछ अच्छा ही होता है। अत: गुरु के दर्शन किसी भी प्रकार की आकांक्षा न करते हुए सच्ची श्रद्धा से करने चाहिए। मेरी तो ऐसी ही धारणा है।

स्तुत्य है पूज्य माँ की गुरु के प्रति आस्था जिसका साक्षात् फल शारीरिक स्वस्थता और आध्यात्मिक विकास के रूप में मिला है, परम्परा से मुक्ति भी शीघ्र मिलेगी, ऐसी मेरी भावना है। हम भी गुरु के प्रति आप समान दृढ़ श्रद्धानी बनें, उनके आचरण को प्राप्त कर सकें.....।

इसी भावना से अनंतश: वन्दामि.....।

६. अनूठा नियम

प्रसंग है नियम लेने का। दीक्षा-दिवस पर सभी पू. आर्यिकाश्री से नियम माँग रहे थे, तब उन्होंने अपने तीसरे दीक्षा-दिवस की अनूठी बात सुनाई.....।

''एक बार मैंने दीक्षा-दिवस पर बड़ी माताजी (आर्यिका विशालमती माताजी) से कहा कि मैं आज उपवास करूँगी तो माताजी ने मना कर दिया। ''नहीं, स्वास्थ्य ठीक नहीं है।'' मैंने पुन: कहा कि रस-परित्याग कर दूँ तब उसके लिए भी उन्होंने मना कर दिया। बोलीं-पहले ही तीन रसों का त्याग है और कितना त्याग करोगी ? मैं डर गयी। फिर भी ५-१० मिनट बाद डरते-डरते मैंने पुन: कहा-आप ही कुछ नियम दे दो.....सुनकर थोड़ा मेरी तरफ देखकर, सोचकर बोलीं, ठीक है, आज तुम किसी को भी नहीं देखना, यह नियम ले लो। मैंने नियम ले लिया, उस समय तो मुझे यह नियम बहुत बड़ा लगा था। पूरे दिन याद रख-रखकर यह नियम निभाया था। लेकिन आज उस नियम के माध्यम से जीवन में साधना के सूत्र मिले हैं और मिलते रहते हैं। आज भी मैं प्रतिमाह २-३ दिन किसी को भी नहीं देखने का नियम रखती हूँ, बहुत अच्छा लगता है। निर्विकल्पता का अनुभव होता है और उस समय जो आनन्द की अनुभूति होती है उसे मैं शब्दों में नहीं बता सकती हूँ। सल्लेखना की साधना भी हो जाती है। सच, हमेशा के लिए ऐसा हो जाये तो जीवन की सार्थकता हो जाये। मेरी माताजी ने मुझे एक दिन का नियम नहीं दिया था वरन् मुझे साध्य तक पहुँचने के लिए साधना रूपी सोपान प्रदान किया था, उनका उपकार मैं कभी नहीं भूल सकूँगी।

आराधनीय है हमारी पूज्य माँ जिन्होंने नियम लेकर अपने जीवन को

अलंकृत किया और हम सभी को यह सुन्दर प्रसंग सुनाकर नियमों के प्रति हमारी आस्था को संबल दिया।

हम सभी ऐसे अनूठे नियमों का पालन कर अपने गंतव्य को प्राप्त करें·····इसी भावना के साथ जगकल्याणी माँ के श्रीचरणों में वन्दामि·····!

७. अद्‌भुत दलिया

एक दिन सेवा, वैयावृत्ति के प्रसंग पर पूज्य माँ ने आहारचर्या से जुड़ा हुआ बचपन का संदर्भ सुनाया.....

''जब हम चौथी-पाँचवीं कक्षा में पढ़ते थे तब गाँव से बाहर चौका लगाने ताऊजी या माता-पिता जाते थे तो साथ में मुझे भी ले जाते थे। वैसे अपने नगर में जब भी साधुसंघ आये तब घर पर चौका लगता ही था। यद्यपि परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी, फिर भी कोई भी साधु किसी भी समय आ जाये चौका जरूर ही लगता था। घर पर चौका लगने से हम बच्चों को भी चौके के काम करने का सौभाग्य मिलता था-जैसे मुनक्का के बीज निकालो, अनार के दाने निकालो, दूध लेने जाओ और कुछ नहीं तो घर-आँगन की सफाई करो, छोटे भाई-बहिनों को संभालो। जब चर्या का समय हो जाये तो मन्दिर जाओ और आकर बताओ कि साधुओं ने शुद्धि कर ली है या नहीं। जब मुनिमहाराज चर्या पर निकलते तो उनके आगे-आगे चलकर उन्हें अपने घर की तरफ मोड़ते या अपने घर पर लाने का प्रयास करते और अपने घर पर पड़गाहन हो जाये तो जाकर बाजे वालों को बुलाकर लाते·····इतने काम तो हमारे निश्चित थे। अत: हम लोग भी इंतजार करते थे कि कब हमारे यहाँ साधु-संत आयें और हमें सेवा-वैयावृत्ति करने का अवसर मिले। एक बार मैं ताऊजी के साथ आचार्य धर्मसागर जी महाराज के संघ के लिए चौका लगाने अजमेर गयी। मैं तो बड़ी प्रसन्न थी क्योंकि ५ भाई-बहिनों में से मुझे ही जाने का अवसर मिला था। वहाँ एक दिन ताईजी ने कहा-''जाओ, हाथ की चक्की से दलिया दलकर लाओ।'' मैं गयी और चक्की में गेहूँ डालकर उसका हत्था पकड़कर घुमा दिया। गेहूँ के दो-दो टुकड़े हो गये। मैंने सोचा, यही दलिया है, ऐसा ही बनता होगा। मैं डिब्बे में भरकर ले आयी। ताईजी ने देखा तो कहा-

अरे बेटा ! यह अभी दलिया नहीं बना है, जाओ और दलकर लाओ। मैंने फिर से वैसा ही किया तो थोड़े और छोटे-छोटे टुकड़े हो गये, तो मैं फिर लेकर आ गयी। ताईजी ने फिर से कहा, नहीं बेटा ! अभी दलिया नहीं बना है। ऐसे मैंने चार-पाँच बार किया तो दलिया तैयार हो ही गया। ताऊजी ताईजी बड़े प्रसन्न हुए। बोले, देखो! हम बच्ची को साथ लाये हैं तो कितना बड़ा काम कर दिया। जितने समय में मैंने चौका लगाया उतने में हमारी लीला ने दलिया तैयार कर दिया।

बीच में एक श्रावक ने पूछा - आपको उन्होंने चार-पाँच बार लौटा दिया तो आपको गुस्सा नहीं आया ? या आपने मना नहीं किया उन्हें ?

पू. आर्यिकाश्री - नहीं, किस बात का गुस्सा, किस बात का विकल्प, हम तो गये ही चौके का काम करने थे। और फिर मन में यह धारणा बनी थी कि आहार में मुनिराज को दलिया ही चलता है अत: यह आवश्यक है, सो बड़ी प्रसन्नता थी कि आज मैंने बड़ा काम किया है। यदि मैं मेहनत न करती तो महाराज के अनुकूल आहार नहीं बन पाता। उनका स्वास्थ्य भी ठीक नहीं था।

सुनकर श्रावक बोले·····जय हो माताजी आपकी, आपको बारम्बार प्रणाम हो, जो आप बचपन से ही साधुसेवा की निश्छल भावना रखती आ रही हैं। मुझे तो आपकी प्रसन्नता और स्वस्थता का राज यही समझ में आता है कि आपने बाल्यकाल से साधुओं की सेवा की है और माता-पिता के प्रति अपने कर्त्तव्य को विनयपूर्वक निभाया है।

हे पूज्य आर्यिकाश्री ! आपके श्रीचरणों में बैठकर यही प्रार्थना करते हैं कि हमारे अन्तर में भी वैयावृत्ति की भावना सदैव-सदैव बलवती होती रहे। इसी भावना से वन्दामि·····।

८. नींद नहीं आई तो अच्छा हुआ

पौष माह की सर्दी में जब पत्थर भी गलने लगते हैं प्रसंग उसी समय का है। पू. आर्यिकाश्री का चतुर्दशी का उपवास था। पूर्णिमा को आहार में अन्तराय

हो गया, फिर भी दूसरे दिन उपवास कर लिया। सर्दी में जठराग्नि प्रदीप्त होने से भूख बहुत लगती है। तीन उपवास जैसे हो गये सो रात में नींद नहीं आ रही थी। सर्दी भी बहुत थी। चटाई भी नहीं ओढ़ना और दरवाजे के सामने सोना·····नींद कैसे आती !

प्रात:काल मैंने पूछा-पू. माताजी ! आज आपको नींद नहीं आ रही थी.....सुनकर वे बोलीं – नींद नहीं आई सो तो अच्छा हुआ, भगवान का नाम लेती रही, क्या पता कब आयुबंध हो जाये, कब प्राण-पखेरू उड़ जायें। यदि नींद आ जाती तो पड़े रहते मुर्दावत् !

आर्यिकायें व बहिनें - आपने कुछ चिन्तन भी किया होगा। हम लोगों को भी कुछ सुनाइये।

पू. आर्यिकाश्री - जीवन का एक-एक क्षण बहुमूल्य है। हर क्षण बीत रहा है और जो समय बीत गया वह वापस नहीं आयेगा ! यह सर्दी स्थायी नहीं है, यह भी जायेगी। नींद आना भी स्थायी नहीं है और नींद नहीं आना भी स्थायी नहीं है। लेकिन इस समय हम क्या कर रहे हैं ? सोचो-विचार करो जो-जो हमें दिख रहा है वह शाश्वत रहने वाला नहीं है, क्षणभंगुर है। हमें हर समय बारह भावना भानी चाहिए। आज तक जितने भी पुरुषार्थी मोक्ष गये हैं, (जा रहे हैं और जायेंगे) सभी बारह-भावनाओं का चिंतन करके ही गये हैं, सोलहकारण-भावना भाकर तीर्थंकर प्रकृति बाँधने वाले भी बारह-भावनाओं का चिंतन करते हैं। इनका चिंतन करने से ही समता-भाव, साम्य-सुख उत्पन्न होता है। सोलहकारण भावना भायी तो देवों के आसन कम्पित नहीं हुए, देव नहीं आये, लेकिन बारह-भावना भाते ही देवों के आसन कँप गये। जो देव कभी नहीं आते मध्यलोक में वे भी बारह भावना भाते ही आ गये। वास्तव में बारह-भावनाओं का चिन्तन हमेशा-हमेशा करना चाहिए। जो बारह भावनाओं को याद रखता है, उनका चिन्तन करता रहता है उसको कहीं पर कभी संक्लेश नहीं होगा, वह आर्त्त-रौद्र ध्यान से बचता रहेगा। तुम लोगों को भी हर समय बारह-भावनाओं को भाते रहना चाहिए ताकि अपनी मंजिल को प्राप्त कर सको।

चिन्तन सुनकर सभी श्रद्धा से नत हो गये और बोले-धन्य हो माँ आप!

जो अपने हर क्षण का सदुपयोग आत्मकल्याण के लिए स्वयं करती हैं और हमारे लिए श्रेयस्कारी पथ की प्रदर्शिका बनी हुई हैं। हमारी भी विचारधारा आपके जैसी बने, इसी भावना से आपको प्रणाम·····।

९. आखिर रत्न कौन ?

श्रावकों ने जैसे ही पू. आर्यिकाश्री की 'रत्न' उपाधि लगाकर जय बोली तो पू. माताजी ने मना कर दिया। ''कृपया मुझे रत्न लगाकर नहीं बोलना।'' तब श्रावकों ने पूछा-माताजी ! आपको रत्न लगाकर क्यों नहीं बोलें ? तब पू. माताजी ने एक सुन्दर संस्मरण सुनाया।

अवसर था पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का। स्थान गुना। सान्निध्य था पूज्य मुनिद्वय श्री समतासागर जी और श्री प्रमाणसागर जी महाराज का। वहीं मैं भी पंचकल्याणक में सम्मिलित थी। महोत्सव सानन्द सम्पन्न हो गया। बात आयी प्रशस्ति-पत्रों की। वे भी तैयार होने में ही थे। उनकी विषय-वस्तु समाज के पंच मुनिश्री प्रमाणसागर जी महाराज को दिखा रहे थे। वहीं मैं भी बैठी हुई थी। मुनिश्री के देखने के पश्चात् पंचों ने मुझे भी दिखायी तो मैंने पूछा कि यह सब विषय-वस्तु किसने तैयार करवायी है ?

पंच - माताजी ! हम लोगों ने ही तैयार की है।

पू. आर्यिकाश्री - तुम लोगों को मुनिश्री रत्न नहीं दिखते क्या ?

पंच-माताजी ! आप कैसी बातें कर रही हैं, मुनिद्वय तो रत्न ही हैं।

पू. आर्यिकाश्री - फिर आप लोगों ने इन प्रशस्ति-पत्रों में मुनि-रत्न क्यों नहीं लिखा, मात्र आर्यिकारत्न ही क्यों लिखा ?

सुनकर सभी के चेहरे पर संकोच की रेखाएँ उभर आयीं और वे मुनिश्री की ओर देखने लगे। चर्चा सुनते हुए मुनिश्री भी मन्द-मन्द मुस्कुरा रहे थे।..... जब मैंने थोड़ा जोर देकर पुन: पूछा तो वे बोले-''माताजी ! बात ऐसी है कि अभी तक हमने जहाँ-जहाँ जितने भी बैनर देखे हैं सभी पर 'आर्यिकारत्न' ही लिखा देखा है। सो हम लोगों ने भी आर्यिकारत्न लिख दिया। हमें कहीं 'मुनिरत्न' लिखा नहीं मिला अत: हमने भी मुनि-रत्न नहीं लिखा।'' सुनकर वे स्वयं और

मुनिश्री भी हँसने लगे। फिर मैंने कहा कि जब आप जानते ही नहीं हो कि वास्तव में रत्न कौन है, रत्न कहते किसे हैं तो फिर लिखकर स्वयं को व दूसरे को भी शर्मिंदा क्यों करते हो ? इसलिए भैया ! मुझे ऐसा लगता है, या मैं ऐसा सोचती हूँ कि सामने वाला हमारी प्रशंसा कर रहा है तो क्या मैं सचमुच प्रशंसनीय हूँ, ऐसी गलतफहमी में मत रहना। क्यों ? क्योंकि जो प्रशंसा कर रहा है वह किसी-न-किसी स्वार्थ को लेकर ही कर रहा है। यह संसारी प्राणी है, स्वार्थ से ही अपने कार्य किया करता है।

श्रावक - फिर माताजी ! उस समय हमें क्या सोचना चाहिए ?

पू. आर्यिकाश्री - जब कोई प्रशंसा करे तब विचार करो कि यह सब कर्म का उदय है और कर्म का उदय मतलब संसार है, कर्मोदय में हर्ष-विषाद किया या करते रहे तो संसार वृद्धिंगत ही होगा। अत: तुम लोग जो वास्तव में रत्न है, उसको रत्न कहो। मुझे यह 'रत्न' जो जड़ रूप है उसकी उपाधि मत लगाया करो। मेरा इस पर्याय में आर्यिका पद बहुत बड़ा है और अपने गुरु के असीम गुणों को उपाधियाँ लगाकर सीमित शब्दों में बाँधकर उनके गुणों को कम क्यों करते हो ?

सुनते ही सभी बोले, धन्य हो मातुश्री आप ! जो पदों की आपद से कोसों दूर रहती हैं, संसार में शब्दों की वास्तविकता को समझकर अपने आपको कषायों के जंजाल से बचाते हुए मोक्षमार्ग में अपने गंतव्य की ओर सतत बढ़ती चली जा रही हैं। ऐसी निस्पृह साधिकाश्री ने यह संस्मरण सुनाकर हम सभी को कषायों की उग्रता से बचने का संकेत दिया।

चिन्ता और कांक्षा से दूर, निश्चिन्त और नि:कांक्ष होकर अपने में विश्रान्ति पाने वाली पूज्य माँ के चरणों में उन जैसा बन जाने हेतु कोटि-कोटि वन्दामि.....।

१०. आचरणात्मक सीख

एक बार एक श्रावक ने पू. माताजी से पूछा-''माताजी ! अपने से बड़ों को कुछ सिखाना हो, बताना हो तो किस प्रकार बताना चाहिए, बोलकर तो बता नहीं सकते फिर किस प्रकार बताएँ ?''.....

पू. आर्यिकाश्री - बड़ों को कभी बोलकर नहीं बताना चाहिए, अपने आचरण से विनय से बताना चाहिए। मैं इस विषय में एक घटना बताती हूँ.....

जब मैं घर में थी, मेरा १३-१४ वर्ष की उम्र से ही नियम था कि दो बार से अधिक अन्न की चीजें/वस्तुएँ नहीं खाऊँगी। शादी के बाद एक बार सावन-भादों के महीने में जब नये-नये मक्का आते हैं उस समय की बात है। बारिश हो रही थी। घर के सभी लोग एक साथ बैठकर भुट्टा सेककर खा रहे थे। घर की मालकिन सभी बेटों-बहुओं, बच्चों को भुट्टा देती जा रही थी और सभी आनन्द के साथ खा रहे थे। उन्होंने मुझसे भी कहा कि लो बहू! तुम भी खा लो। अब मैं सोच में पड़ गयी क्या करूँ ? फिर सोचा-बड़ों की बात को टालना अच्छी बात नहीं है और भुट्टा खा लिया। तत्काल कुछ भी नहीं कहा। समय निकला.....सायंकालीन भोजन की बात आयी तो मैंने धीरे से कह दिया कि हमारा नियम है दो बार ही अन्न की चीज खाने का सो मैं दो बार खा चुकी हूँ, अब नहीं खाना है। सुनकर सभी को विस्मय हुआ और थोड़ा झटका-सा भी लगा, लेकिन घर के बुजुर्ग सोचने पर मजबूर हो गये-यह १७-१८ वर्ष की बहू है और इतना बड़ा संयम ! उसी समय से उन दोनों सेठ-सेठानी ने भी नियम ले लिया कि हम भी दो बार से ज्यादा मुँह जूठा नहीं करेंगे। यह कहलाती है आचरण से सीख, लेकिन होनी चाहिए नियम पालने में समता, प्रसन्नता और विनय, नम्रता तभी सामने वाला प्रभावित होकर जीवन को परिवर्तित कर लेता है।

श्रावकों को अपने प्रश्न का उत्तर पूज्य माँ के मुख से उन्हीं के जीवन का प्रसंग सुनकर मिला तो सभी कह उठे, माँ ! आप धन्य हो ! बचपन से ही आपके कार्य, चर्या स्वयं के और दूसरों के उपकार रूप रहे हैं, ऐसी स्वपरोपकारिणी माँ के चरणों में वन्दामि.....।

११. अनोखी मनौती

महाराष्ट- प्रान्त में अतिशय क्षेत्र कचनेर पार्श्वनाथ जी युगों-युगों से जनमानस की आस्था का केन्द्र बना हुआ है। हम सभी दक्षिण की यात्रा में प्रभुपार्श्वनाथ स्वामी के दर्शन करने वहाँ पहुँचे। सभी ने पू. आर्यिकाश्री के साथ

दर्शन किये, दर्शन करते ही सबका मन-मयूर नाच उठा। सभी अपने-अपने परिणामानुसार पूजन, वंदन, अर्चन कर रहे थे। कोई प्रभु को निर्निमेष निहार रहा था, तो कोई प्रभु के ध्यान में लीन होकर माला फेर रहा था। पूज्य माँ तो खाना-पीना छोड़कर अर्थात् उपवास करके प्रभु के सामने ही सामायिक में बैठ गयी। प्रभु के चरणों में जाकर भक्त कुछ-न-कुछ माँग ही लेता है। सभी श्रद्धालु यहाँ आकर अपनी-अपनी मनौती करते ही हैं और अपनी श्रद्धा, भक्ति के अनुसार फल भी पाते हैं। हम सब भी जब भगवान की आराधना करने के बाद दोपहर में स्वाध्याय करने हेतु बैठे तो स्वाध्याय के पूर्व सभी बहिनों, आर्यिकाओं ने अपनी-अपनी मनोभावनाएँ व्यक्त कीं। एक बहिन ने कहा-मैंने तो दीक्षा की मनौती की तो एक बहिन बोली मैंने तो आपके मंगलमय उभय स्वास्थ्य की मनौती की, एक आर्यिका ने कहा-मैंने तो पुनर्दर्शन की भावना की। दूसरी आर्यिका बोली-मैंने निरतिचारव्रतपालन की भावना भायी.....इस प्रकार जब सभी ने अपनी-अपनी मनोभिव्यक्तियाँ बतायीं तो मैंने पू. आर्यिकाश्री से कहा-माताजी! आपने भी कुछ माँगा होगा ? **पू. आर्यिकाश्री -** ''मैं भगवान से कुछ नहीं माँगती हूँ। उनके दर्शन मात्र से ही सब मिल जाता है फिर क्यों माँगूं और यह घास-फूस क्यों माँगूंगी-माँगूंगी भी तो फसल माँगूंगी।'' ''फिर भी माताजी ! आपने कुछ तो सोचा होगा, कुछ तो भावना भायी होगी, कृपया बताइये ना....'' थोड़ी देर तो वे टालती रहीं.... परन्तु जब सबने सागृह पुनः निवेदन किया तो वे बोलीं-

पू. आर्यिकाश्री - अच्छा, सुनो। मैंने भगवान के सामने क्या भावना भायी है। मैंने भगवान से कहा- ''हे भगवन् ! संसार में जितने भी रत्नत्रयधारी हैं, सभी के रत्नत्रय की पूर्णता हो जाये और जो रत्नत्रय धारण करना चाहते हैं उनको रत्नत्रय की प्राप्ति हो जाये तथा शेष जितने जीव हैं उन सबके रत्नत्रय लेने के भाव हो जायें।''

इस लोकोपकारी मनौती को सुनते ही ऐसा लगा, सच दुनिया में आप ही जगज्जननी हो, जगकल्याणी माँ हो क्योंकि जिसका हृदय सर्व जीवों के कल्याण की भावना से भरा हो वही तो इस परम पुनीत माँ पद का अधिकारी होता है। सच में हमारी गुरु माँ का हृदय वात्सल्य, करुणा, दया का निलय है तो

आपके कार्य परोपकार के प्रकाश हैं, आपके विचार, वाणी, वचन मोतियों की माला हैं। फिर आपको जगतवंदनीया माँ क्यों न कहें, निश्चित ही कहेंगे।

हे भगवन् ! सत्त्वेषु मैत्री की भावना भाने वाली माँ को शीघ्र ही रत्नत्रय की पूर्णता मिले और हम सभी उनके चरण-कमलों में बैठकर रत्नत्रय की आराधना करें। इसी भावना से केवलज्ञान के अविभागी प्रतिच्छेद बराबर..... वन्दामि-वन्दामि-वन्दामि !

१२. अतृप्त मोह

आर्यिका गुरुमती माताजी के संघ से मिलन हुआ तब एक आर्यिका ने अपना अंतर्जल्प सुनाया। उस समय पू. आर्यिकाश्री ने अतृप्त मोह की अनुभूति की चर्चा की। वह इस प्रकार है –

जब मैं गृहस्थावस्था में थी तो सबसे पहले मुझे ब्र. कुसुम दीदी मिली। उनके प्रति आकर्षण उत्पन्न हुआ। उनसे प्रेम हो गया तो ऐसा लगता था कि इनके पास एक दो घंटे बैठ लूँ तो भी मन तृप्त नहीं हो पाता था। फिर ऐसा लगता था कि पूरे दिन इनके पास ही बैठी रहूँ और जब घर छोड़कर इनके पास आ गयी तो लगता था अब इनके पास ही रहूँ। २४ घंटे साथ-साथ रहने पर भी मोह तृप्त नहीं हो पाता था। मन संतुष्ट नहीं होता था, और-और की आस लगी रहती थी। दीक्षा लेकर साथ-साथ रहने लगे, एक-दो वर्ष हो गये तब भी मेरा मन मोह के कारण अतृप्त ही रहा। जब असाता वेदनीय के तीव्र उदय से बीमारी से आक्रान्त हो गयी तो ऐसा लगने लगा कि हम अब वियुक्त हो जायेंगे तो परिणामों में इतनी विकलता हुई कि मैं मर जाऊँगी तो फिर ये (आ. विशालमती माताजी) कहाँ मिलेंगी ? नहीं, मैं इनके बिना नहीं रह सकती। इतना बड़ा इष्ट-वियोग नाम का आर्त्तध्यान ! मोह की पराकाष्ठा ही थी। यदि उस समय मेरे प्राण निकल जाते तो निश्चित ही दुर्गति होती भव-भ्रमण ही बढ़ता हम स्वस्थ हो गये, उसके बाद फिर १०-१२ साल साथ-साथ रहे, फिर भी मोह की तृप्ति नहीं हुई, जिस प्रकार आग में ईंधन डालने पर आग बढ़ती ही

जाती है उसी प्रकार मोह की जितनी-जितनी तृप्ति करना चाहते हैं वह उतना-उतना ही बढ़ता जाता है। जब उनकी सल्लेखना हुई, उस समय हमारे मोह ने तो संसार की रीतियों की सीमा ही लाँघ दी। दोपहर १२ बजे उनकी समाधि हो चुकी थी, सभी को समझ में भी आ गया था कि प्राण निकल चुके हैं। हमें भी समझ में आ रहा था कि अब कुछ नहीं है। फिर भी हमारे मोह ने शरीर थोड़ा गरम-सा लगा तो चार बजे डॉ. को बुलवाया। परीक्षण करवाया। यह मोहान्धता का परिणाम था जो शव का भी परीक्षण करवा लिया। जानबूझ कर भी मोह रूपी मदिरा से भ्रमित थे तभी तो वे शव में भी जीवित लग रहे थे। अब भी जब कभी २-३ दिन उनके बारे में चर्चा नहीं करते तो ऐसा अनुभव होने लगता कि कितने दिन हो गये माताजी से नहीं मिले, साधु होकर भी, अध्यात्म को समझकर भी मोह में ऐसा ही होता है। इसलिए मैंने अब धारणा बना ली है कि अब मुझे किसी से भी मोह नहीं करना है। क्योंकि मुझे अपने जीवन में सबसे ज्यादा प्रेम और मोह की अनुभूति उनसे हुई। अब किसी से वैसे प्रेम मोह की अनुभूति नहीं होती है। अब वे भी चले गये तो फिर किससे मोह करना, अब उस मोह को पछाड़ना है और इसको पछाड़ने के लिए प्रबल पुरुषार्थ की आवश्यकता है। यह कर्मों का राजा है, इतना ढीला-ढाला नहीं है कि यह थोड़े से पुरुषार्थ से परास्त हो जाये। अरे ! इसको पराजित करने के लिए घन रूप चोट चाहिए। मोह को पराजित किये बिना मोक्ष कभी प्राप्त नहीं होगा। इसीलिए माताजी ! वास्तव में संसार-सागर पार करना चाहती हो, अपने गंतव्य को प्राप्त करना है तो मोह से दूर रहो और जिस समागम से मोह उत्पन्न होता है उस समागम को तो झटका देकर ही छोड़ देना चाहिए। क्योंकि वह समागम अनर्थ की जड़ है।

धन्य हैं पू. आर्यिकाश्री आप और आपका यह चिन्तन जो हम सभी को सम्बल देने के साथ-साथ निज की ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट करता है कि आखिर हम साधु हैं, हमें ऐसा नहीं करना चाहिए।

मोह छोड़ने की सूक्ति देने वाली माँ के चरणों में हम भी मोह छोड़कर मोक्षप्राप्ति का पुरुषार्थ करें, इसी भावना के साथ- नमन-नमन-नमन.....॥

१३. अब क्यों न करूँ

प्रसंग है सागर, वर्णी कालोनी का ! जेठ का महीना जब सूर्य अपने पूर्ण प्रताप के साथ ऊपर-नीचे सर्वत्र तपाता है, यहाँ तक कि हवा को भी गरम कर देता है। चारों तरफ गर्मी-ही-गर्मी। फिर भी पू. आर्यिकाश्री ने उपवास कर लिया। उपवास किया वो तो ठीक है, उस पर भी सबसे ऊपर की मंजिल में जहाँ खुला बरामदा था, पूरे दिन वहीं बैठे रहे। दोपहर में पूरे बरामदे में धूप आ गयी तो संघस्थ सभी सदस्यों ने कहा-पू. माताजी ! आप नीचे चलिए, नीचे बैठ जाइए·····फिर भी नहीं उठे। श्रावकों ने भी निवेदन किया तब भी अपने स्थान से नहीं हिले। यह भी कहा, आप नीचे नहीं चल रहे हैं तो ऊपर ही कमरे में चले जाइये फिर भी पू. माताजी वहीं बैठी रहीं। अंदर-बाहर की गर्मी सहन करते-करते दिन बीत गया। सभी देख-देखकर दुखित हो रहे थे। प्रतिकूलता को सहन करते देखकर, मनोबल की इतनी अडिगता को देखकर सब पूज्य आर्यिकाश्री के प्रति नतमस्तक हो रहे थे। सभी श्रावक-श्राविकाओं को आश्चर्य हो रहा था। सभी धन्य-धन्य कर रहे थे, अहो धन्य है आपका धैर्य, धन्य है आपकी आत्मा और धन्य है हमारा भाग्य जो आज कलिकाल में भी ऐसी साधना करने वाले साधकों का सान्निध्य हमें मिला है।.....

दो दिन बाद जब पू. आर्यिकाश्री से पूछा कि आपने ऐसा क्यों किया तो वे बोलीं-''साधु से कभी क्यों मत पूछना, वह अपनी साधना के लिए स्वतंत्र हैं।'' माताजी फिर भी आपने कुछ तो सोचा होगा। बार-बार पूछने पर बताया-''जब मैं छोटी थी, घर में जगह नहीं थी, एक ही कमरा था, उसमें दोपहर से ही धूप आ जाती थी और शाम तक रहती थी, तब भी तो वहीं बैठे रहते थे, सहन करना ही पड़ता था, कहीं इधर-उधर भी नहीं जा सकते थे। फिर आज हम कर्म-निर्जरा के लिए थोड़ी-सी प्रतिकूलता सहन नहीं कर सकते क्या? जब पराधीनता में भी इतना सहन किया फिर **अब क्यों न करूँ।** और वो भी आत्म-कल्याण के लिए सहन करूँ तो कौन-सी बड़ी बात है।''

अहो ! धन्य हो पू. माताजी आपको ! जो हर-क्षण अपने साध्य को साधने में उद्यत रहती हैं और अपने आचरण से जनमानस को भी शिक्षा देती

हैं कि सदैव लक्ष्य ही साधो, इधर-उधर की क्रियायों में अपना समय मत गँवाओ।

साध्य के प्रति सजग, जागरुक साधिका के चरणों में अपने साध्य को पाने की भावना से वन्दामि·····।

१४. समता रखो

ग्रीष्मकाल में कुण्डलपुर में आचार्यश्री के दर्शन करके सागर की तरफ आ रहे थे। वाँसा में एक-दो दिन का प्रवास रहा। प्रवास के दौरान पू.आर्यिकाश्री ने उपवास कर लिया और दूसरे दिन पारणा में अंतराय हो गया। सायंकाल प्रवचनोपरांत विहार हुआ। एक स्थान पर रात्रिविश्राम कर प्रात:काल विहार करके एक स्कूल में जाकर रुके। आहार की व्यवस्था यहीं थी। स्कूल की इमारत की अस्त-व्यस्त स्थिति थी। चारों तरफ से खिड़कियाँ टूटी थीं तो ऊपर से छप्पर भी धूप को पूर्णत: नहीं रोक पा रहा था। जमीन भी धूल-कंकड़ों से भरी थी, ऊबड़-खाबड़ भी थी। ऐसा स्थान देखकर मैंने पू. माताजी से कहा- ''इतनी गर्मी है, अभी से लू चल रही है। पूरा दिन यहाँ कैसे निकालेंगे।'' सुनकर पू. आर्यिकाश्री ने कहा, ''माताजी ! इतनी विकलता क्यों ला रही हो मन में, अरे ! आज साधना का अवसर मिला है तो उपयोग कर लो, कर्म की निर्जरा कर लो, विकल होकर के कर्मबंध नहीं करो।'' मैंने फिर कहा-माताजी ! फिर भी कैसे सहन करेंगे·····?

पू. आर्यिकाश्री - ''अरे माताजी ! गर्मी में एक स्थान पर रुककर ठण्डे स्थान पर बैठे रहे तो क्या साधना है, उस साधना से कर्मनिर्जरा भी नहीं होगी। साधना तो ऐसे में ही है जब चारों ओर से लू आ रही हो, ऊपर से भी तप रहा हो, नीचे से बैठने को भी समतल स्थान नहीं हो, तब हमारे परिणाम समता रूप बने रहें, शांति से बैठकर यथावत् चर्या-चर्चा करते रहो तो साधना है। और यही साधना कर्मनिर्जरा में सहायक है। अनुकूलता में रहकर तो सभी साधना कर लेते हैं लेकिन श्रेष्ठ साधक वही है जो प्रतिकूलता में भी अनुकूल साधना करले। देखो अपने आचार्यश्री को, बारिश में, सर्दी में अमरकण्टक में रहते हैं तो गर्मी में कुण्डलपुर में रहते हैं। प्रतिकूलताओं को बुला-बुलाकर साधना

करते हैं। विशेष निर्जरा के लिए प्रतिकूलता को बुलाना और उसमें समता रखनी चाहिए और तुम्हें तो सहज ही प्रतिकूलता मिल गयी है। फिर इतने आदर्श आचार्यश्री को सामने देखकर भी तुम इतना घबरा रही हो। समता रखो और अपने को याद रखो कि हम कौन हैं।''.....

पू. आर्यिकाश्री का तत्त्व-चिन्तन सुनकर मुझमें भी साहस आया और फिर पूरे दिन गर्मी का विकल्प भी नहीं हुआ। पूज्य माँ की शीतल छाँव में उनकी सौम्य-प्रसन्न मुद्रा को देख-देखकर, स्वाध्याय में उनकी शीतलवाणी रूपी अमृत का पान करते-करते पता ही नहीं चला कि सायंकाल कब आ गया। और आगे बिहार हो गया। बिहार करते-करते मुझे एक विचारक की पंक्ति याद आ गयी कि साधु और मुस्कान में अविनाभावीपना है। पूज्य माँ के आनन पर यह सदैव झलकता ही रहता है। या यों कह दें कि प्रसन्नता का आलय माँ का मुखारविन्द है। सच भी है कि साधु जैसी प्रसन्नता खिले हुए कुसुम के अलावा और कहाँ ! हमारी माँ के स्वास्थ्य का राज भी यह प्रसन्नता ही है।

हर क्षण, हर प्रतिकूलता में प्रसन्न रहने वाली, प्रसन्न रखने वाली पूज्य माँ को बारम्बार वन्दामि.....।

१५. एक लौंग का मूल्य

पपौरा जी अतिशय क्षेत्र में त्यागी-व्रती बहिनों को अनर्थदण्ड के संदर्भ में बताया कि वस्तु का मूल्य नहीं, उसकी उपयोगिता का मूल्य है। इस पर स्वयं की अभिव्यक्ति सुनाई.....।

''जब हम लोग (आर्यिका विशालमती जी, मैं और आ. विद्युतमती जी) हरदा वर्षायोग के पश्चात् विहार करके सिद्धवरकूट, बड़वानी, ऊन, पावा.....की यात्रा करने जा रहे थे तो रास्ते में एक दिन विहार करते-करते मुझे बुखार आ गया। एक-दो दिन रुकने जैसा स्थान भी नहीं था, जंगल ही जंगल था, लगभग १२ कि.मी. का विहार करना था। बुखार बढ़ता ही जा रहा था, वैसे १०२-३ डिग्री बुखार आ गया। जैसे-जैसे बुखार बढ़ता जा रहा था वैसे-वैसे सिर भी चढ़ता जा रहा था। बड़ी माताजी (आ. विशालमती जी)

सोच रही थीं कि क्या लगायें, क्या करें कि सिर ठीक हो जाये, विचार करते-करते उन्हें एकदम याद आया और उन्होंने साथ में चलने वाले भैया से पूछा-कि आपकी जेब में कुछ लौंग-इलायची·····है क्या ? उन्होंने अपनी पूरी जेबें टटोलीं उनके पास मात्र एक लौंग मिली। उस एक लौंग में से आधा घिसकर बहिनों ने मेरे माथे पर लगाया और आधी लौंग सूँघने के लिए मेरे हाथ में दे दी। उस आधी लौंग को सूँघते-सूँघते १२ कि.मी. का विहार किया। ऐसे समय में समझ में आता है कि आवश्यकता पड़ने पर वस्तु का कितना मूल्य है। वास्तव में, पदार्थ का नहीं वक्त पर उसकी उपयोगिता का मूल्य है। तभी से मैं अनर्थदण्ड के बारे में सोचती हूँ तो समझ में आता है कि हम कितना सप्रयोजन करते हैं और कितना निष्प्रयोजन करते हैं।''

पूज्य आर्यिकाश्री सदैव यही उपदेश देती हैं कि अपनी कथनी व करनी में समानता रखकर श्रावकों को बिना प्रयोजन कुछ भी नहीं करना चाहिए। हम प्रत्येक क्रिया में विचार करके विवेकपूर्ण कार्य करें तो नरक-तिर्यंच गति से बच सकते हैं।

कथनी-करनी में समानता रखने वाली पूज्य माँ के चरणों में ''हम बिना-प्रयोजन के पाप से बचें'' इस भावना से वन्दामि.....।

१६. अनूठा सम्प्रेषण

प्रसंग है १९९२ का, जब कटंगी में पूज्य आर्यिकात्रय का वर्षायोग था। आर्यिकात्रय रत्नत्रय की आराधना में रत, अपनी साधना में जागृत थीं। समयानुसार सभी अच्छा चल रहा था। लेकिन कर्म का उदय संसार में किसी को नहीं छोड़ता है। बड़ा बलवान है कर्म। साधु हर क्षण उसके बल को समाप्त करने का पुरुषार्थ करते रहते हैं, किन्तु कभी-कभी आत्मपुरुषार्थ प्रबल होने पर भी कर्मबली का जोर चल जाता है, वह अपना रंग जमा लेता है। हुआ ऐसा ही। पूज्या आर्यिकाश्री विशालमती माता जी के असाता कर्म का ऐसा उदय आया कि उनके पैर में फोड़ा हो गया जो दिन दुगुनी रात चौगुनी वेदना

के साथ बढ़ता ही जा रहा था। संघस्थ सभी सदस्य और श्रावकगण प्रासुक वैयावृत्ति कर रहे थे। लेकिन वेदना ठीक तो क्या कम भी नहीं हो रही थी। चारों तरफ से योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव मिलाने पर भी असाता अपना रंग नहीं छोड़ रही थी। इतनी भयंकर वेदना में भी पू. आर्यिकाश्री अपनी साधना के प्रति, आवश्यकों के प्रति सजग थीं। आर्यिकाश्री (विज्ञानमती माताजी जिनको बचपन से ही सेवा-वैयावृत्ति करना अच्छा लगता है) अपने अनुभव, विवेक, बुद्धि के द्वारा डॉक्टर, वैद्यों की सलाह ले-लेकर योग्य उपचार कर रही थीं, करवा रही थीं। फिर भी कुछ आराम नहीं लग रहा था, तब उन्होंने विचार करके संघस्थ बहिनों को, स्थानीय ब्र.अरुण भैया से आचार्यश्री से आशीर्वाद लाने के लिए कहा कि अब तो गुरु-आशीष ही श्रेयस्कर उपचार है, यद्यपि पहले ही समाचार भेज देते परन्तु उनकी (आ. विज्ञानमती माताजी की) सोच थी कि इतनी छोटी-छोटी बातों के लिए गुरु को क्यों विकल्प करवायें तथापि श्रद्धा इतनी थी, गुरुभक्ति पर विश्वास भी इतना था कि आशीर्वाद मिलते ही ठीक हो जायेगा या यूँ कहो कि गुरु को बीमारी बताते ही उपचार याद आ जायेगा और हुआ भी यही। बहिनों ने जैसे ही आचार्यश्री को पूरी बात बतायी तो आचार्यश्री ने आशीष देते हुए मिट्टी का प्रयोग करने के लिए कहा-वैसे ही गुरु के भावों का ऐसा सम्प्रेषण हुआ कि उसी समय आपने (आ. विज्ञानमती जी ने) इधर मिट्टी का प्रयोग करवाया और वह असह्य वेदना एक-दो पट्टी लगाते ही समाप्त हो गयी। जब बहिनें और भैया वापस आये तो देखा कि माताजी को तो कोई वेदना ही नहीं है। तब अरुण भैया ने कहा, सच ! गुरु के प्रति ऐसी श्रद्धा होनी चाहिए कि उनके भावों का सम्प्रेषण इतना चमत्कार कर गया। परोक्ष में गुरु वचन मिलते ही प्रत्यक्ष में औषध का कार्य कर गये। पू. आर्यिकाश्री की सेवा का भाव फलीभूत हो गया। जहाँ चाह होती है, वहाँ आस्था, श्रद्धा स्वयं राह दिखाती है।

धन्य हो माताजी आप, हमारे हृदय में भी ऐसी ही गुरुभक्ति रहे, सेवा-वैयावृत्ति के भाव रहें.....

वन्दामि-वन्दामि-वन्दामि.....।

१७. स्वाध्याय से वैराग्य दृढ़

मोक्षमार्ग सम्बन्धी चर्चा के दौरान स्वाध्याय की महत्ता बताते हुए पू. आर्यिकाश्री ने स्वयं का प्रेरणास्पद संस्मरण सुनाया।

''जब मैं दसवीं कक्षा में पढ़ती थी तब मैंने **परमात्म-प्रकाश** ग्रंथ का स्वाध्याय किया था। उस समय जो आनन्द आया था उसे मैं शब्दों में नहीं कह सकती हूँ। मुझे बचपन से ही शास्त्र पढ़ने का बहुत शौक है, मैं पढ़ती भी थी और उसमें जो विशेष लगता था उसे लिखती भी थी। मैंने **मोक्षमार्ग-प्रकाशक** का स्वाध्याय किया, यद्यपि वह कभी पूरा नहीं हुआ, फिर भी मेरे जीवन में वैराग्य का मूल स्रोत वही रहा है। उसके माध्यम से ही मैं आयतन-अनायतन क्या हैं, सच्चे देव, कुदेव क्या हैं, समझ सकी, जान पायी। मेरे वैराग्य को दृढ़ बनाने में, सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के प्रति अगाध श्रद्धा स्थिर करने में इसी ग्रन्थ का स्वाध्याय प्रेरक रहा है। इसलिए स्वाध्याय करना चाहिए, भले ही समझ में आये-न-आये, जिनवाणी के शब्द भी श्रद्धा पूर्वक पढ़ने से ज्ञान का क्षयोपशम बढ़ता है और चारित्र में भी निर्मलता आती है। शास्त्र पढ़ने और उसमें से महत्त्वपूर्ण लिखने की रुचि के कारण ही मुझे जिनवाणी समझ में आने लगी। लिखने का शौक था सो मैंने घर में ही एक बार मेरी भावना का अर्थ लिखा था। आज वो ही मेरे जीवन के विकास में कारण बनी है।''

सुनकर मैंने कहा-मुझे अब समझ में आ गया आपके साहित्य-सृजन का पुरुषार्थ। धन्य हैं पूज्य माँ ! हम सभी को भी शुभाशीष मिले, हम भी आपके जैसे स्वाध्याय करके रत्नत्रय की आराधना करें और अपनी मंजिल को पायें, इसी भावना से कोटिश: वन्दामि.....।

१८. वीतरागी प्रभु ही दिखें

एक दिन आर्यिका पवित्रमती माताजी को उदास देखकर पूज्य माता जी ने कहा कि तुम्हें क्या हो गया है आज ? कुछ शारीरिक पीड़ा है क्या ? तो उन्होंने कहा-नहीं। **पू. आर्यिकाश्री** तो फिर वैराग्य आ रहा है क्या, यदि

संसार-शरीर-भोगों से वैराग्य आ रहा है तो हमें भी सुनाओ कि आज वैराग्य का विशेष क्या कारण बना है ?'' तब पवित्रमती जी ने इशारे से कहा, ''मेरा अभी मौन है, बाद में बताऊँगी।'' तभी एक ब्र. बहिन ने कहा-''माताजी ! अब वैराग्य सुनने के लिए आपको इंतजार करना पड़ेगा।''

पू. आर्यिकाश्री - ''नहीं बहिन ! मुझे इन सब बातों को सुनने की जिज्ञासा नहीं रहती है। मैं तो चाहती हूँ कि मेरे कान मात्र जिनेन्द्र भगवान की वाणी सुनें, मुझे तो साक्षात् भगवान की दिव्य-ध्वनि सुनने का इंतजार रहता है। जिनेन्द्र भगवान से यही प्रार्थना करती हूँ कि मेरे कान यहाँ-वहाँ की कोई भी बात न सुनें। यह सब तो मजबूरी से सुनना पड़ता है। मेरे कान तो मात्र भगवान की वाणी सुनने को ही तरसते हैं। बहिन ! मेरी तो यही भावना है कि मेरे शरीर का प्रत्येक अंग मात्र वीतराग प्रभु को ही पसंद करे। मेरी आँखें मात्र जिनेन्द्र-देव को ही देखें। मैं तो सोचती हूँ कि मेरे अन्दर इतनी भक्ति व शक्ति आ जाये कि यदि कभी भूल से किसी सरागी देव के प्रति दृष्टि चली भी जाये तो उनमें भी मुझे वीतराग भगवान ही दिखें। मेरी जिह्वा वीतराग प्रभु का ही नाम ले। यह भोजन में रस न लेकर भगवान के नाम का ही रसास्वादन करे। मेरे पैर यहाँ-वहाँ विचरण करके प्रमादचर्या का पाप न करें बल्कि मात्र प्रभुदर्शन के लिए ही गमन करें। मेरे हाथ इधर-उधर के कार्य न करके मात्र प्रभु को नमस्कार करने के लिए बद्धांजलि हों। मेरा मन पंचेन्द्रिय के विषय-भोगों को याद न करे अपितु सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का ही ध्यान करे।''

माताजी ! आप धन्य हो, आपकी ऐसी विचारधारा सुनकर ऐसा लग रहा है कि वास्तव में आपका ही यह मानवदेह प्राप्त करना सार्थक है। हम भी आप जैसी धारणा बनायें, ऐसा शुभाशीष दीजिये।

आपको बारम्बार वन्दामि.....।

१९. मुझे स्वयं अनुभव है

तेला के समय प्रसंगवशात् बहिनों को स्वाध्याय की महिमा पूज्य आर्यिकाश्री ने अपनी अनुभूति के माध्यम से यों बतायी-

''ज्ञान से अपने परिणामों में निर्मलता आती है, वैराग्य में वृद्धि होती है, कषायों का शमन होता है। अपने अन्तस् के परिणामों को सँभालने में सहयोग मिलता है। मुझे स्वयं अनुभूति होती है कि दस वर्ष पहले आहार करने के भाव, उठने, सोने, बैठने के भाव, प्रवृत्ति के भाव और दस वर्ष बाद आज के भावों में काफी अंतर है। अब प्रवृत्ति अच्छी नहीं लगती, निवृत्ति की तरफ जाने के ही भाव होते हैं, वैराग्य बढ़ता जाता है, प्रतिकूलताओं को सहन करने की क्षमता आती है। संसार की तरफ से दृष्टि हटती जाती है। लेकिन एक बात याद रखना ज्ञान होने पर मान/घमण्ड नहीं आना चाहिए। यदि घमण्ड आ गया तो वह ज्ञान उद्दण्डता की तरफ ले जायेगा, गुरुओं का तिरस्कार करवायेगा, अधोपतन करा देगा। जैसे एक किलो बादाम का हलुआ बनाया और उसमें एक कड़वी बादाम आ गयी तो मरण भी हो सकता है। इसलिए विनय के साथ ज्ञान की आराधना करो, पढ़ो-लिखो ताकि हम जिस लक्ष्य को लेकर यहाँ आए हैं वह लक्ष्य हमें प्राप्त हो। नहीं तो जिस प्रकार विष की एक कणिका जीवन समाप्त कर देती है उसी प्रकार ज्ञान का घमण्ड एक भव नहीं, भव-भव खराब कर देता है जिससे संसार-सागर बढ़ता ही जाता है। अत: तुम लोग खूब पढ़ो, कषायों को मंद करो, संक्लेश कभी नहीं करो, परिणामों को निर्मल बनाकर अपना मोक्षमार्ग पर चलना / आना सार्थक करो और दीक्षा लेकर निर्मल चारित्र धारण कर स्त्रीलिंग छेद करके कालान्तर में लक्ष्य प्राप्त करो, मेरी तो यही भावना है।''

जुग-जुग जयवंतो पूज्य माँ ! ३ दिन के उपवास में हर क्षण ज्ञानामृत का पान स्वयं करते हुए हम सभी को उसी ज्ञानामृत का पान करने की प्रेरणा दे रही हैं। आपके पाद-पयोज में केवलज्ञान के अविभागी प्रतिच्छेद बराबर वन्दामि.....।

२०. रुचि हो तो बन्धन बाधा नहीं
(अद्भुत लगन)

प्रसंग २००४ महावीर जयन्ती के शुभ अवसर का है जब दक्षिण भारत की तरफ विहार हो रहा था तब इन्दौर में २-४ दिन का प्रवास रहा। आश्रम के ब्रह्मचारी-वर्ग से तत्त्वार्थ-मंजूषा के संदर्भों पर चर्चा करते हुए

पूज्य आर्यिकाश्री ने बताया-मुझे बचपन से ही तत्त्वार्थ-सूत्र बहुत अच्छा लगता है। दस वर्ष की थी तभी शुद्ध उच्चारण करना सीख लिया था पर अर्थ समझने की ललक बनी रही और जब आचार्यकल्प विवेकसागर जी महाराज का भिण्डर में चातुर्मास हुआ तब संघस्थ ब्र. कुसुम दीदी (पू. आर्यिका विशालमती जी) ने मुझे तत्त्वार्थ-सूत्र का अर्थ समझाया। दीदी एक घंटा क्लास पढ़ा देती थी पर पुन: पढ़कर याद करने का समय नहीं मिलता था तो बहुत दुख होता था। घर के लोग समय-सीमा में ही धर्म का कार्य करने देते थे विशेष रूप से स्वाध्याय, जाप, पूजन……आदि। फिर भी जब पढ़ने की अतिरुचि हो तो कोई भी बंधन बाधा नहीं बन सकता है।

ब्रह्मचारी वर्ग - फिर आप किस विधि से, किस प्रकार से अध्ययन करते थे ?

पू. आर्यिकाश्री - मुझे बहुत ही दुख होता था न पढ़ पाने का। सो मैं तो घर के काम करते-करते भी दोहराती रहती थी। जैसे-मैं 'सूत्र' तो दूध गरम करती जाती और याद करती रहती थी। बड़ा परिवार था सो दूध भी ज्यादा होता था, सिगड़ी पर दूध का भगौना रख दिया, बीच-बीच में चम्मच चलानी पड़ती थी सो चलाती जाती और याद करती रहती थी। कभी-कभी चरखा चलाते (सूत कातते) समय भी याद करती थी। और अर्थ-परिभाषायें……आदि जब घर के सब लोग सो जाते तब अर्द्धरात्रि में एक-डेढ़ बजे उठकर हाथ-पैर धोकर वस्त्र बदलकर जहाँ सार्वजनिक बिजली जलती थी वहाँ बैठकर साढ़े तीन-चार बजे तक पढ़ती थी। उस समय किसी को कुछ भी पता नहीं रहता था कि कौन क्या कर रहा है। साढ़े चार-पाँच बजे तक घर के बुजुर्गों के उठने का समय हुआ तब तक वापस वस्त्र बदलकर सो जाती थी। ऐसा करते-करते २-३ महीने में तत्त्वार्थ-सूत्र अर्थ सहित याद कर लिया तभी तो आज भी मुझे वो याद है। क्योंकि बड़ी कठिनाई से याद किया था। उसी समय से मेरी भावना थी कि मैं तत्त्वार्थ-सूत्र पर कुछ करूँ और उसी भावना को आर्यिका विशालमती माता जी की प्रेरणा और आचार्यश्री के शुभाशीष से मूर्त करने का प्रयास किया है। यह सब है तो उन्हीं उपकारी माँ का !''

इतना अनूठा और अद्‌भुत प्रसंग सुनकर सभी ने कहा, ''इतनी मेहनत और लगन से स्वाध्याय करने वाला स्वाध्यायी ही १२० शास्त्रों का निचोड़ लेकर इतने सुन्दर ग्रन्थ का संकलन कर सकता है।''

पू. माताजी धन्य हैं आप और धन्य है आपकी रुचि और धन्य है आपका श्रम जो युगों-युगों तक स्वाध्याय प्रेमियों को स्वाध्याय करने की प्रेरणा देता रहेगा।

जिनवाणी के प्रति आप जैसी रुचि हमारी भी हो, इसी विनय के साथ आपको कोटि-कोटि नमन.....।

२१. पाँच वर्ष में भी.....

सौन्दर्य-प्रसाधन की सामग्री पर प्रसंगवशात् पू. आर्यिकाश्री ने बड़ी ही रोचक व शिक्षाप्रद बात बतायी-

''मैं जब १०-१२ वर्ष की थी तो हमारे एक परिचित अहमदाबाद में रहते थे, उन्होंने गर्मी के मौसम में पौण्डस् पाउडर का एक डिब्बा भेजा तो घर के बड़ों ने सोचा कि बच्चे हैं, लगा लेंगे। परन्तु हम लोगों ने बचपन से ही कभी किसी प्रकार की क्रीम, पाउडर, बेसलीन.....आदि लगाये ही नहीं थे। न कभी देखे थे, न जानते थे कि इनका उपयोग किस प्रकार होता है। अधिक-से-अधिक सरसों का या नारियल का तेल लगा लिया, वो भी कभी-कभी सर्दी में। इसलिए वह पाउडर का डिब्बा घर में पाँच बच्चे होने पर भी पाँच वर्ष में भी खाली नहीं हुआ। मुझे अभी बड़ा आश्चर्य होता है कि आप लोग इतना पाउडर कैसे लगा लेते हैं। मैंने तो शुरू से कभी कोई शृंगार नहीं किया है और अब ऐसा लगता है कि सच में ये भोग कदली वृक्ष की भाँति हैं, इनमें कोई सार नहीं है। और हम इन नश्वर विषयों की ओट में अपने आपको समृाट् मान बैठते हैं। तभी तो भोगते जा रहे हैं जबकि ये तुच्छ हैं, क्षणिक हैं।''

धन्य हैं माताजी आप और आपके माता-पिता जिन्होंने अपने बच्चों को सदैव भोगों के कीचड़ से बचाकर पापों से बचाया। धन्य हैं आप जैसे बच्चे जो सदैव भोगों से बचकर योग के प्रति जागरुक रहे।

जयवन्तो पूज्य माँ जिन्होंने अपने माता-पिता के संस्कारों से सुरभित होकर सारी दुनिया को महका दिया।

आपको वन्दामि.....।

२२. भोगना तो अपने हाथ में है

एक बार एक भैया ने कहा कि ''माताजी ! मैं आलू नहीं खाता पर मेरे जीजाजी ने जबर्दस्ती मुँह में आलू डाल दिया'', आलू खिला दिया तो माताजी ने कहा, ''भैया ! मुँह में तो जबर्दस्ती डाल सकता है दूसरा, पर उसको निगलना या गले उतारना तो आपके खुद के हाथ में है। मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ था''.....

''गृहस्थावस्था में मुझे भी मजबूर होकर एक बार उदयपुर जाना पड़ा था। उदयपुर की 'सहेलियों की बाड़ी' में दम्पतियों व मित्रों की टोलियाँ घूमने आती हैं। मैं भी वहाँ गयी। मैंने सोचा-अब यहाँ क्या करें ? ये पेड़-पौधे, चकरी, झूला, झरना.....आदि देख लिया बड़ी मुश्किल से २ घण्टे निकाले। मुझे वह सब अच्छा नहीं लग रहा था, फिर भी मैंने सोचा-चलो, अब घर जाकर स्वाध्याय करेंगे। लेकिन जैसे ही वहाँ से निकले तो सबने कहा-''चलो, सिनेमा चलो।'' सुनकर मैं तो अवाक् रह गयी। सोचा, यह क्या हो गया, जैसे-तैसे करके कुए से निकले तो खाई में आ गिरे। मुझे बहुत दुख हो रहा था, अब वहाँ क्या करेंगे ढाई घंटे तक। फिर भी मना नहीं कर पायी क्योंकि मना करते ही अभी लड़ाई-झगड़ा होगा और लड़ाई-झगड़ा करना मुझे बचपन से ही पसन्द नहीं है। संक्लेश करना मैंने कभी सीखा ही नहीं सो चुपचाप जाकर सिनेमा हॉल में बैठ गयी। पहली बार मैं सिनेमा गयी थी सो वहाँ जाकर देखा-एक सफेद परदा लगा है, सामने कुर्सी बिछी है, हम बैठ गये। जैसे ही पिक्चर शुरू हुई, अँधेरा हो गया। एक दो मिनट देखा, क्या हो रहा है ? जो हम रोज घर में करते हैं वैसा ही तो हो रहा है। तो मैं तो कुर्सी पर टिककर सो गयी। आराम से ढाई घंटे की नींद निकाल ली और घर पर आकर रात्रि में स्वाध्याय कर लिया।''

सुनकर सभी को हँसी भी आयी और विस्मय भी हुआ कि आप घर में भी इतनी विरक्त थीं। भोगसामग्री मिले फिर भी उसे नहीं भोगना बहुत साहस, स्थिरता का कार्य है। आपने जो कहा वह सच लग रहा है कि भोगसामग्री तो दूसरा प्राप्त करवा सकता है परन्तु भोगना तो अपने हाथ में है। कोई मुँह में तो रख सकता है पर उसको निगलना तो स्वयं के हाथ में ही है।

धन्य हैं माताजी आप ! जो बचपन से ही भोगों के प्रति इतनी उदासीन रहीं तभी तो आज भी आपको बाह्य वातावरण प्रभावित नहीं कर पाता है। आप अपने में ही लीन रहती हैं और निजत्व को प्राप्त करने का पुरुषार्थ करती रहती हैं।

हमारे मन में भी विषयभोगों के प्रति विरक्ति के भाव रहें, इसी भावना से वन्दामि·····।

२३. मुझे तो बाल ब्रह्मचारिणी बनना था.....

प्रसंगवशात् एक ब्र. बहिन ने पू. आर्यिकाश्री से पूछा कि माताजी ! जब आपको बचपन से ही इतना वैराग्य था, अहिंसा धर्म के प्रति झुकाव रहा, सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के प्रति अगाढ़ श्रद्धा रही, आचरण में भी क्रियान्वित करते रहे, भोगों के प्रति उदासीनता रही, आपने न कभी मेहंदी लगाई, न पाउडर लगाया, न क्रीम लगाई, न कभी कोई विशेष वस्त्रआभूषण पहनने के भाव हुए····फिर भी आपने शादी कैसे करवा ली ? **आर्यिकाश्री** - अरे बहिन ! बस, यही मत पूछो मुझसे। मुझे तो बचपन से ही बाल ब्रह्मचारिणी बनने का शौक था परन्तु मुझमें इतना साहस नहीं था और ना ही ऐसा सत् सान्निध्य मिला जिससे कि मेरी भावना पूरी हो जाये। मूल कारण तो अंतरंग में चारित्र-मोहनीय का उदय था। मैंने कई बार साहस भी जुटाया कि माता-पिता से कह दूँ कि मुझे विवाह नहीं करना है परन्तु बड़ों के सामने बोलने के संस्कार शुरू से ही नहीं थे, बड़ों ने जो कह दिया वो करना ही है। फिर भी मैंने एक बार माँ से कहा कि मुझे विवाह नहीं करना है तो माँ बोली-बापू से पूछलो।·····बापू से कहने का साहस था ही नहीं सो मन-की-मन में रह गयी, लेकिन धारणा तो बना ही ली थी कि मैं घर में नहीं रहूँगी, आर्यिका बनूँगी सो पूरी हो गयी।

रही बात बाल-ब्रह्मचारिणी बनने की सो मैं भावना भाती हूँ कि अब आगे निर्ग्रन्थ दशा की प्राप्ति हो। ८ वर्ष तक तो बच्चे नंगे घूमते ही हैं और फिर ८ वर्ष अंतर्मुहूर्त बाद मुनि बन ही सकते हैं। अत: बहिन ! मेरी भावना तो यही है और उसी का पुरुषार्थ कर रही हूँ।''

धन्य हैं पू. माताजी आप और आपकी भावना ! आपने विवाह भी किया तो अनिच्छा से, तभी तो १८ माह बाद ही घर छोड़कर मोक्षमार्ग पर आ गयी। आपको ब्रह्मचर्य के प्रति इतना प्रेम है, बहुमान है, इसलिए शील के संदर्भ में इतना साहित्य सृजित किया।

जयवंत रहें आप और आपकी भावना। आप जैसे हम भी बनें, इसी भावना से वन्दामि·····।

२४. सभी कार्य पुरुषार्थ साध्य हैं

प्रसंगवशात् त्यागी-व्रती वर्ग को पू. माताजी ने प्रवचन करने की, स्वाध्याय करने की प्रेरणा दी तो एक बहिन ने कहा-''माताजी ! प्रवचन करना कैसे सीखें ? जब स्वाध्याय करते हैं तब तो लगता है कि हाँ, हम इस संदर्भ को इस प्रकरण में सुना देंगे, लेकिन जब सुनाने बैठो तो कुछ भी नहीं बनता है। आप कैसे हर प्रसंग पर, हर वाक्य पर, हर शब्द पर तत्काल प्रवचन कर देती हो, वो भी आगम और अध्यात्म को साथ में लेकर·····। आपने कैसे सीखा?''

पू.आर्यिकाश्री - ''अरे ! बहिन मुझे कुछ नहीं आता है। यह सब गुरुओं की कृपा है। मैं तुम्हें आपबीती सुनाती हूँ। तब मैं घर से आयी थी। आये लगभग ८-१० महीने हुए होंगे। हमारी कुसुम दीदी (आर्यिका विशालमती जी) बहुत अच्छा प्रवचन करती थीं। एक दिन उन्होंने मुझसे कहा-''आज तुम भी दस मिनिट प्रवचन करना।'' उन्होंने मुझे विषय भी बता दिया·····तैयार भी करवा दिया। मैंने अच्छे से तैयार भी कर लिया और प्रवचन करने बैठी तो मंगलाचरण कर लिया। जय·····बोल दी। फिर बोलना शुरू किया तो सम्यग्दर्शन के आठ अंग होते हैं नि:शंकित, नि:कांक्षित·····। तीन-चार बार यही पंक्ति दोहराती रही। फिर भी कुछ नहीं आया, तो जय बोल दी·····। ऐसी है मेरी बुद्धि। समय

निकला। मेरी दीक्षा हो गयी। हम लोग नसीराबाद में रुके थे। बड़ी माताजी (आ. विशालमती जी) की अनुपस्थिति में मुझे प्रवचन करना पड़ा तो मैंने जैसे-तैसे करके घड़ी देख-देखकर समय बिताया। दो-तीन दिन बाद श्रावकों ने आकर बड़ी माताजी से कह दिया-''माताजी ! हर किसी को प्रवचन करना नहीं आता है। आप सबको प्रवचन करने मत भेजा करो।'' सुना बहिन ! ऐसा है मेरा इतिहास। (सभी विस्मित से आर्यिकाश्री को देखते रहे) इसलिए बहिन ! मेरे विचार से तो पुरुषार्थ करो, पुरुषार्थ से सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं। लेकिन हाँ, इतना याद रखो कि कभी प्रवचन करने के लिए स्वाध्याय मत करना। ज्ञान का अर्जन उपदेश का लक्ष्य बनाकर मत करना, मात्र अपने चारित्र को निर्मल बनाने के लिए करना। और जितना-जितना चारित्र निर्मल होता जाएगा उतना-उतना ज्ञान निखरता जाएगा। मेरे विचार से तो **चाहे सांसारिक कार्य हों या आध्यात्मिक कार्य हों, सभी पुरुषार्थ साध्य हैं।**

ब्र. बहिन - माताजी ! जब आपने ३-४ बार एक ही वाक्य बोला तब आपको कुछ विकल्प नहीं आया ? आप हताश नहीं हुए ?

पू. आर्यिकाश्री - किस बात का विकल्प, क्यों हताश होते। अरे! यह तो क्षायोपशमिक ज्ञान है, कभी कम, कभी ज्यादा होता रहता है और मुझे तो स्वाध्याय करना अच्छा लगता था। मन भी उसी में लगता था सो ६-६ घंटे स्वाध्याय करते रहते थे !

रोचक व शिक्षाप्रद अतीत सुनकर सभी को बहुत अच्छा लगा और सभी को स्वाध्याय की महिमा समझ में आ गयी कि स्वाध्याय करो, प्रवचन करना अपने आप ही सीख जाओगे !

पूज्य माँ की आपबीती सुनकर मन उत्साह और उमंग से भर गया और चारित्र-धारण करने की भावना बलवती होने लगी, इसी भावना से निर्मल चारित्र को धारण करने के लिए निर्मल चारित्रधारी माँ के चरणारविन्द में नमन-नमन-नमन !

— तृतीय खण्ड —

सवाल आपके, जवाब आर्यिकाश्री के

१.	आज नहीं तो कल, जीव जाएगा सँभल	६४
२.	पीछे वालों को याद रखो	६४
३.	विहार करना भी धर्मध्यान	६५
४.	आदर्श कौन?	६५
५.	यह कुछ भी नहीं है	६७
६.	द्रव्यात्मक है, चारित्रात्मक नहीं	६७
७.	गुणवत्ता होनी चाहिए	६८
८.	साधु बीमार क्यों?	६९
९.	मोह और वात्सल्य	७०
१०.	टेन या प्लेन	७०
११.	सत्ता बहुत बड़ी है	७१
१२.	जहाँ मिलेगा वहाँ जायेंगे	७१
१३.	विवेक होना चाहिए	७२
१४.	ऐसा ही हमारे बारे में गुरु सोच लेते तो	७२
१५.	जैनत्व को सुरक्षित किया	७३
१६.	विमानोत्सव क्यों?	७४
१७.	भोगों की इच्छा नहीं करो	७५
१८.	आखिर क्या पूछा होगा	७५
१९.	कषायों के उदयाभाव में धर्म है	७६
२०.	तो भी असाता ही बँधेगी	७७
२१.	कषायों पर नियंत्रण रखना सीखो	७८
२२.	सीमित भी नहीं हुआ	७९
२३.	अधिक निर्जरा	७९
२४.	चतुर्थकाल में भी...	८०

१. आज नहीं तो कल, जीव जाएगा सँभल

श्रावक - पूज्य आर्यिकाश्री ! आज की पीढ़ी को समझाने से, समय देने से कुछ भी लाभ नहीं है क्योंकि ये मानते तो हैं नहीं ?

पू. आर्यिकाश्री - भैया ! ऐसा नहीं है। आज की पीढ़ी को समझाना ही चाहिए, भले ही वह अभी नहीं माने, लेकिन समय आने पर उन्हें याद आ गयी तो वे सुधर सकते हैं, अपने जीवन को सुधार सकते हैं और एक व्यक्ति भी सुधर गया तो समाज, देश, राष्ट- सुधर सकता है, सुधर जाता है। अरे ! एक अकलंक ने धर्म को सुरक्षित बचा लिया। एक बात और है, अभी इस भव में नहीं तो परभव में भी याद आ सकती है। जीव कल्याण कर सकता है। मेरे दीक्षागुरु आचार्यकल्प विवेकसागर जी महाराज हमेशा कहा करते थे कि ''धर्म सुना दो, समझा दो और श्रावको ! तुम भी सुन लो, समझ लो। अभी क्रियात्मक नहीं कर पा रहे हो कोई बात नहीं। यदि पापोदय से नरक में भी चले गये तो वहाँ दुखों से घबराकर तुम्हें अभी की बातें गुरु की शिक्षा याद आ गयी तो भी सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकते हो।'' इसलिए भैया ! मेरा तो विचार यही है कि हमें अपना कर्त्तव्य तो करना ही चाहिए। आज नहीं तो कल जीव सँभल सकता है।

२. पीछे वालों को याद रखो

ब्रह्मचारी वर्ग - पू. आर्यिकाश्री ! आप आचार्यश्री की 'चर्चा' की कैसिट सुन लो ?

पू. आर्यिकाश्री - मैं कैसिट नहीं सुनती हूँ।

ब्र. वर्ग - क्यों कैसिट सुनने में भी पाप लगता है क्या ? गुरु के वचन ही तो हैं ?

पू. आर्यिकाश्री - हाँ, कैसिट सुनने में बिजली की अनुमोदना का पाप लगता है। विचार करो कि बिजली कैसे उत्पन्न होती है। जहाँ बिजली उत्पन्न होती है वहाँ द्वीन्द्रिय.....आदि ही नहीं संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों की भी हिंसा हो जाती है। हम बिजली का उपयोग करेंगे तो उनकी हिंसा की अनुमोदना का हमें

भी पाप लगेगा और फिर हम अभी कैसिट सुनेंगे तो साथ वाले कह करके चालू करवायेंगे और उसके आगे वाले तो बटन ही दबाने लगेंगे। इसलिए जब मैं अभी इतना करूँगी तभी आगे वाले मात्र सुनेंगे ही।

ब्रह्मचारी वर्ग को दोनों तर्क युक्तिपूर्ण लगे तो स्वयमेव ही पूज्य आर्यिकाश्री के विचारों से सहमत हो गये और ''अपने जीवन में भी अति-आवश्यक को छोड़कर बिजली का उपयोग नहीं करेंगे'' ऐसा विचार बना लिया।

३. विहार करना भी धर्मध्यान

वृद्ध दादाजी - माताजी ! इतनी भीषण गर्मी है, आप विहार मत करो, एक जगह रुककर स्वाध्याय करो, धर्म-ध्यान करो।

पू. आर्यिकाश्री - अरे दादाजी !- विहार करना सबसे बड़ा धर्मध्यान है और फिर प्रतिकूल परिस्थिति में विहार करना तो दोहरे लाभ वाला है। धर्म-ध्यान भी है और कर्म-निर्जरा भी होती है। **भगवती आराधना** में विहार के लाभ बताये हैं-विहार करने से साधना में वृद्धि होती है, साधना में निखार आता है, मोह की वृद्धि नहीं होती है। प्रतिकूलता सहन करने से साहस आता है, सहनशीलता बढ़ती है, मनोबल मजबूत होता है। साधर्मी साधुओं का समागम मिलने से चर्या, ज्ञान, त्याग-तपस्या.....आदि कर्म-निर्जरा के कार्य करने की प्रेरणा मिलती है। इसलिए दादाजी ! साधु को तो विहार करते ही रहना चाहिए, इससे आगम की आज्ञा का भी पालन होता है।

दादाजी के साथ-साथ सभी श्रावकों को भी आगम का आदेश सुनने को मिला !

४. आदर्श कौन ?

श्रावक - पू. माताजी ! सभी भगवान एक ही होते हैं ?

पू. आर्यिकाश्री - भगवान कहते किसे हैं या भगवान की परिभाषा क्या है ?

श्रावक - पू. माताजी ! हमें क्या पता, हम नहीं जानते, आप ही बता दीजिये ?

पू. आर्यिकाश्री - जिन्होंने कषायों और इन्द्रियों को जीत लिया है वे जिन हैं, वे ही हमारे भगवान हैं। मनावर से विहार करते समय एक मुसलमान ने जब जैन सेठजी से जयजिनेन्द्र किया तो सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन भाई से पूछा तो उन्होंने बताया कि माताजी ! मैंने अपने सभी ग्राहकों को जिनेन्द्र भगवान का / सच्चे देव का स्वरूप समझा दिया है सो वे सभी मुझसे जयजिनेन्द्र करते हैं और आपस में भी अभिवादन जयजिनेन्द्र शब्द से ही करते हैं। अरे! तुम सोचो तो, राम-सीता, राधा-कृष्ण, शंकर-पार्वती को पूजते हो, देखो तो सही कि हमारा आदर्श कौन है, क्या है ? वह हमसे कुछ अलग है या नहीं? जहाँ-जहाँ हम हाथ जोड़ते हैं वह हमारे से ऊँचा है या नहीं ? हमारा आदर्श, हमारा नायक हमसे आगे तो होना ही चाहिए। हमें अपना आदर्श ऐसे को बनाना चाहिए जो हमारे से विलक्षण हो। सच्चे-देव का स्वरूप तो समझो।

श्रावक - पू. माताजी ! मंत्रों का भी प्रभाव पड़ता है क्या ?

पू. आर्यिकाश्री - हाँ, मंत्रों का भी प्रभाव पड़ता है। अरे ! बड़े-बड़े रोग भी मंत्रों से चुटकी बजाते ही समाप्त हो जाते हैं लेकिन होनी चाहिए श्रद्धा। केसली में एक लड़के को साँप ने काट लिया। उसने तत्काल उस स्थान पर चीरा लगाकर खून निकाल दिया। फिर भी रात तक उसे जहर चढ़ गया। परिवार वाले घबराकर मेरे पास आये, मैंने कहा भक्तामरस्तोत्र के ४१ वें काव्य (रक्तेक्षणं) का पाठ करो ब्र. बहिनों ने उसके घर जाकर एक गिलास में जल लेकर काव्यपाठ शुरू किया। काव्य पढ़ते गये और जल बच्चे पर छिड़कते गये। पाठ १०८ बार पूरा होते-होते पूरा जहर उतर गया। डॉ. भी आश्चर्यचकित था। वह व्यक्ति आज भी स्वस्थ है। यह मंत्रों का प्रभाव है !

श्रावक - मंत्र भावपूर्वक पढ़ें तो ही प्रभाव पड़ता होगा ?

पू. आर्यिकाश्री - नहीं, शब्दोच्चारण का भी प्रभाव पड़ता है, श्रद्धा से उच्चारण किया हो बस !

पू. माताजी ! हमें जय-जिनेन्द्र का अर्थ और भगवान कौन है तथा मंत्र क्या है, संक्षेप में उदाहरण से समझ में आ गया। अब हम सबको अपना आदर्श सोच-विचार करके ही बनाने को कहेंगे।

वन्दामि माताजी ।

५. यह कुछ भी नहीं है

ब्र. शैला - पू. माताजी ! संकल्प लेने से क्या फल मिलता है ? संकल्प भी नहीं लिया और प्रयोग भी नहीं करता है तो क्या उसे कुछ भी फल नहीं मिलेगा ?

पू. आर्यिकाश्री - बहिन ! संकल्प करने से ही निर्जरा होती है। क्योंकि संकल्प करते ही मन में विकल्प उत्पन्न होने लगते हैं। जैसे उपवास का कायोत्सर्ग किया। करते ही घबराहट सी होने लगती है। उस घबराहट को सहन करने से ही निर्जरा होती है। जैसे मेरा नियम है कि सोमवार को दो हरी लूंगी। उसमें भी मन विचार करता है कि कौन-सी लूँगी ? यह ले लो तो ठीक रहेगा, नहीं यह लेना है, नहीं-नहीं श्रावक जो दे देगा वो ले लूँगी या हमने जो मन में सोच लिया है वे ही लूँगी·····अनेकानेक विकल्प उत्पन्न होते हैं और इन विकल्पों के उत्पन्न होने पर उनमें समता रखना, उन्हें शांति से सहन करना ही निर्जरा है। दूसरी बात, जैसे कोई बच्चा रोज-रोज स्कूल तो जाता है पर उसने स्कूल में प्रवेश नहीं लिया है तो वह अगली क्लास में नहीं पहुँच सकता; उसी प्रकार संकल्प लिये बिना विशेष फल नहीं मिल सकता है !

ब्र. बहिन - माताजी ! आपको देखकर लगता है कि यह बहुत है, अत्यधिक है।

पू. आर्यिकाश्री - नहीं बहिन ! गोली-बिस्कुट की दुकान वाले को किराना की दुकान बहुत बड़ी लगती है। लेकिन सराफा वाले हीरे-मोती की दुकान वाले से पूछो तो वह कहेगा यह कुछ भी नहीं है। त्याग के क्षेत्र में हमेशा अपने से ऊपर वाले को देखो। धर्मात्मा भी यदि अपने से बड़े अहिंसक धर्मात्मा के पास पहुँच जाये तो उसे समझ में आता है कि उसने अभी धर्म नहीं किया है।

६. द्रव्यात्मक है, चारित्रात्मक नहीं

ब्र. बहिन - पू. माताजी ! पण्डितों के पास चारित्र नहीं है, फिर भी इतना ज्ञान कैसे होता है ?

पू. आर्यिकाश्री - बहिन ! पण्डितों का ज्ञान द्रव्यात्मक होता है, चारित्रात्मक नहीं। पूर्वोपार्जित क्षयोपशम है और पुरुषार्थ भी है, लेकिन उनके ज्ञान का प्रभाव नहीं पड़ता है, क्यों ? क्योंकि पण्डित ग्रन्थों का स्वाध्याय करा देगा, धर्मोपदेश भी दे देगा लेकिन चारित्र की बात नहीं करता है। जैसे मैंने देखा कि मन्दिर में पानी खींचने वाली बाल्टी में कड़ी नहीं है तो श्रावकों को कह दिया कि कड़ी वाली बाल्टी रखनी चाहिए ताकि बिलछानी सही विधि से हो सके। रोज-रोज पानी भरते हैं। कभी भी मन हो जाये बिलछानी सही ढंग से करने का, क्योंकि एक बार सही ढंग से बिलछानी करने का फल ८४००० मुनियों को आहार देने के पुण्य बराबर मिलता है। ये बातें पण्डित नहीं बतायेगा क्योंकि वह स्वयं वैसा आचरण नहीं करता है और बता भी देगा तो सामने वाले पर प्रभाव नहीं पड़ेगा। इसलिए बहिन पण्डित की बात सुनकर कोई आचरण की तरफ नहीं बढ़ेगा। द्रव्य से ज्ञान प्राप्त कर लेना कोई बड़ी बात नहीं है। भावात्मक ज्ञान अर्थात् भेद-विज्ञान प्राप्त हो जाये यह बड़ी बात है। शिवभूति मुनि को देखो, अक्षरात्मक ज्ञान नहीं था उन्हें परन्तु भावात्मक ज्ञान था सो आत्मज्ञ बनकर मोक्ष चले गये।

अत: बहिन ! मात्र ज्ञान को नहीं, चारित्र को भी धारण करो क्योंकि चारित्र से केवलज्ञान होता है। हाँ, ज्ञान से चारित्र में निर्मलता जरूर आती है। अत: मेरा विचार तो यही है कि अहिंसा को समझो, उसका पालन करो, ज्ञान का क्षयोपशम स्वत: ही बढ़ता चला जायेगा!

७. गुणवत्ता होनी चाहिए....

श्रावक - जैन अल्पसंख्यक क्यों हैं ?

पू. आर्यिकाश्री - संसार में पत्थर ज्यादा हैं या हीरे मोती। अच्छी वस्तुएँ अधिक नहीं होती हैं। क्योंकि अच्छी वस्तुएँ सभी को मिलने लगें तो उनका दुरुपयोग होने लगेगा। आचार्य शान्तिसागर जी महाराज के दर्शन करके जो आनन्द आता था वो वर्तमान साधु के दर्शन करने पर नहीं आता है। क्योंकि उनमें गुणवत्ता थी। हमारी छोटी माताजी (आर्यिका विद्युतमती जी) बताती थीं कि ६ दिन तक बैलगाड़ी से चलते रहे थे, चलते रहे थे तब कहीं आचार्य शांतिसागर

जी महाराज के दर्शन हो पाये थे लेकिन दर्शन करके जो सुखानुभूति हुई थी उसे मैं बता भी नहीं सकती हूँ और उस क्षण के आनन्द को भूल भी नहीं सकती हूँ, वो तो अलग ही आनन्द था। लेकिन आज दर्शन करके वैसी अनुभूति नहीं होती है। क्यों ? आज साधु के दर्शन बहुत सुलभ हो गये हैं। जैन संसार-सागर में हीरे-मोती के समान हैं अत: अल्पसंख्यक हैं।

८. साधु बीमार क्यों.....

श्रावक - साधु उबला पानी पीते हैं, भोजन भी सादा ही करते हैं फिर भी बीमार क्यों रहते हैं ?

पू. आर्यिकाश्री - श्रावक आहार की विधि अच्छी तरह से नहीं जानता, इसलिए साधु के शरीर में वात-पित्त-कफ कुपित हो जाते हैं और वात-पित्त-कफ कुपित हो जाने से बीमारी आती है। कभी श्रावक ने ठण्डे फलों के ऊपर गर्म पानी पिला दिया, कभी दूध के साथ-साथ रस दे दिया। कभी कच्चा, कभी अधिक पका और कभी अधपका भोजन खाने से भी स्वास्थ्य खराब हो जाता है। मेरे दीक्षा गुरु स्वर्गीय आचार्यकल्प श्री विवेकसागर जी महाराज ने एक बार ८-१० दिन के लिए गेहूँ का त्याग किया था। तब श्रावकों ने उन्हें मक्का की रोटी और मक्का की ही कढ़ी लेते हुए देखा, तो देखते-देखते सभी वैसा ही भोजन आहार में छह मास तक देते रहे। अब सोचो छह माह तक रूखी-सूखी मक्का की रोटी खायेंगे तो क्या वे साधु बीमार नहीं होंगे ? श्रावक को माता के समान व्यवहार कर साधु को आहार करवाना चाहिए। जिस प्रकार बच्चा बोलता नहीं है वैसे ही साधु भी मौन से आहार लेते हैं। उनकी क्रियाओं से, श्रावक को सोच-विचार करके आहार देना चाहिए। उपवास की पारणा में सूखी सब्जी के साथ रोटी दे दी तो उससे पेट में तकलीफ नहीं होगी क्या ? भोजन के प्रारम्भ में रूखी और कड़क सामग्री दे दी तो पेट में जाकर चुभेगी नहीं क्या ? ऐसे अनेकानेक बाह्य कारण हैं और अंतरंग कारण असातावेदनीय कर्म का उदय है; लेकिन अंतरंग कारण का उदय जो ५० वर्ष बाद आना था वह द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को पाकर उदीरित होकर ५ मिनट में ही आ गया। अत: साधु बीमार हो जाते हैं परन्तु वे बीमारी को समता से सहन करते हैं तो कर्मों की असंख्यातगुणी निर्जरा भी होती है।

९. मोह और वात्सल्य

ब्र. बहिन - पूज्य आर्यिकाश्री ! मोह, वात्सल्य और करुणा में क्या अन्तर है ?

पू. आर्यिकाश्री - बहिन ! मोह, वात्सल्य और करुणा में बहुत अन्तर है। **मोह** में व्यक्ति जिसके प्रति मोह है, उससे अपेक्षा रखता है और पूर्ति न होने पर संक्लेश करता है। इससे मात्र पाप का ही बंध होता है। **वात्सल्य** में साधर्मी के प्रति प्रेम का व्यवहार रखता है। सामने वाले की सेवा-वैयावृत्ति करने के भाव करता है, नहीं करवाने पर दु:खी भी होता है, किन्तु संक्लेश परिणाम नहीं करता है जिससे उसके कर्मों की निर्जरा भी होती है और पुण्य का बंध भी होता है। **करुणा** भाव तो जीव मात्र पर होता है। चाहे वे कुत्ता, बिल्ली, चिड़िया.....आदि कोई भी पशु-पक्षी हो, जो भी तड़फ रहा है सभी की सेवा करता है। यह मात्र पुण्यबंध का कारण है अर्थात् **मोह से मात्र पाप का ही बंध होता है, करुणा से मात्र पुण्य का बंध होता है जबकि वात्सल्य परिणामों से दोहरा लाभ है, कर्म की निर्जरा भी होती है और पुण्य का बंध भी होता है। इसलिए वात्सल्य परिणाम अवश्य रखो, मोह नहीं करना चाहिए।**

१०. ट्रेन या प्लेन

पण्डित जी - ट्रेन से जाने में हिंसा अधिक है या प्लेन से जाने में?

पू. आर्यिकाश्री - गहराई से विचार करें तो (ट्रेन) रेलगाड़ी की अपेक्षा (प्लेन) हवाई जहाज में भाव हिंसा अधिक है और लम्बे समय तक भी है। क्योंकि रेलगाड़ी से जाते समय तत्काल ही विचार बनाते हैं या विचार बनते ही टिकिट ले लेते हैं। लेकिन हवाई-जहाज से जाने के लिए पहले से विचार करना पड़ता है, बहुत दिनों पहले से टिकिट लेना पड़ता है, उसकी सम्भाल करनी पड़ती है, महीनों-महीनों पहले से तत्संबंधी विकल्प होने लगते हैं, इस कारण हवाई-जहाज से यात्रा में भाव हिंसा अधिक है।

पण्डित जी - रेलगाड़ी से जाने में समय अधिक लगता है और हवाई-

जहाज से जाने में समय बच जाता है, उस समय में पूजन पाठ कर लेंगे, शुद्ध भोजन भी कर लेंगे ?

पू. आर्यिकाश्री - हवाई जहाज से जाकर समय बचाया और उस समय में भोजन करने का भाव। अरे पण्डित जी ! खाने का भाव भी विषयभोग है और फिर समय बचाकर उसका उपयोग खाने के लिए करें, यह तो ऐसा हुआ कि नहाने के लिए पहले कीचड़ से पैर भर लो फिर पानी से धोओ, पूजन-पाठ करने के लिए हवाई जहाज में बैठकर हिंसा का पाप करो, यह तो मेरे विचार से बिल्कुल ही उचित नहीं है, मैं इसे धर्म भी नहीं कह सकती हूँ।

११. सत्ता बहुत बड़ी है....

ब्र. बहिन - पू. माताजी ! कर्म की सत्ता के संदर्भ में समझ में नहीं आता है कि आखिर यह सत्ता करती क्या है ?

पू. आर्यिकाश्री - अरे बहिन ! सत्ता बहुत बड़ी है। सत्ता के रहते हुए हम संसार से नहीं छूट सकते हैं। जैसे मिथ्यात्व की सत्ता है तो अनन्तकाल तक। अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल तक संसार में भ्रमण होता ही रहेगा। यद्यपि मिथ्यात्व की बंध, उदय व्युच्छित्ति हो गयी, पर सत्ता में है तो मोक्ष निश्चित नहीं है और यदि मिथ्यात्व की सत्त्व-व्युच्छित्ति हो गयी तो निश्चित है अधिक से अधिक चार भव में मोक्ष हो ही जायेगा। इसलिए सत्ता बहुत बड़ी है, लेकिन उदय दुखदायी है क्योंकि कर्म के उदय में यदि हर्ष-विषाद हो गया तो पुनः-पुनः कर्मों की संतति चलती रहेगी। सत्ता में बैठा कर्म उदय में आये-ही-आये जरूरी नहीं है, उदय में आ भी सकता है, नहीं भी आ सकता है, फिर भी हमने उदय का अभाव तो कई बार किया है, लेकिन सत्ता से अभाव अभी तक नहीं हुआ है। इसलिए संसार में गोते लगाते जा रहे हैं। सत्ता से अभाव हो जाये तो बहुत बड़ी बात है।

१२. जहाँ मिलेगा वहाँ जायेंगे....

गृहस्थ श्रावक - माताजी ! अब तो कुए सूखते जा रहे हैं, पानी नहीं बचा है तब आप क्या करेंगे ?

पू. आर्यिकाश्री - भैया ! जब तुम्हारी दुकान का माल यहाँ नहीं मिलता है तब तुम क्या करते हो ? बाहर जाकर मुम्बई, दिल्ली, कलकत्ता·····जहाँ भी मिले वहाँ से माल लाकर दुकान चलाते हो कि नहीं चलाते हो ? इसी प्रकार हम जहाँ तक बनेगा, जहाँ पर मिलेगा वहाँ जाकर अपना नियम निभायेंगे, चर्या निभायेंगे और मुझे विश्वास है कि कृषिप्रधान भारत देश में कभी कुओं का पानी समाप्त नहीं होगा। अत: तुम चिन्ता नहीं करो कि हम क्या करेंगे !

१३. विवेक होना चाहिए

श्रावक - दीपक जलाने में या धूप खेने में भी पाप लगता है क्या?

पू. आर्यिकाश्री - दीपक जलाने में या धूप खेने में पाप नहीं लगता है लेकिन होना चाहिए विवेक। मैं न जलाने की विधि करती हूँ और न निषेध करती हूँ लेकिन इतना जरूर जानती हूँ, कहती भी हूँ कि जो भी कार्य करें उसमें अहिंसा धर्म का परिपालन अवश्य होना चाहिए। विवेक से कार्य करो, जैसे दीपक जलाकर उसे बारीक जाली से ढकना चाहिए। धूप खेकर भी उसे ढकना चाहिए। यदि खुला रखते हो तो छोटे-छोटे जीव तो क्या छिपकली, चूहा,·····आदि संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव भी जलकर मर सकते हैं और तो और मन्दिर में खेलने वाला तुम्हारा बच्चा भी जल सकता है। अत: दीपक जलाने का निषेध न करके विवेक पूर्वक, अहिंसा धर्म का पालन करते हुए भगवान की आरती करनी चाहिए।

१४. ऐसा ही हमारे बारे में गुरु सोच लेते तो....

ब्रह्मचारी - पू. माताजी ! क्या त्यागी-व्रती को 'कुछ भी नहीं करो, कुछ भी नहीं सोचो' वाली बात मानकर निर्विकल्प बैठना चाहिए ?

पू. आर्यिकाश्री - भैया ! ऐसा नहीं है। प्रथम भूमिका में यदि कुछ स्वाध्याय नहीं करे, नहीं पढ़े तो खाली दिमाग शैतान का घर होता है। इसमें इधर-उधर के विकल्पजाल आयेंगे। मेरे विचार से तो पहले २ मिनट, ५ मिनट कुछ नहीं करने का अभ्यास करो, धीरे-धीरे इसे बढ़ाते-बढ़ाते १० मिनट, २०, ३० मिनट····१ घंटा और जब स्वाध्याय हो जाये, आचार्यश्री जैसा हो जाये

तो फिर २४ घंटे निर्विकल्प बैठ सकते हो, अभी बैठ गये तो डिप्रेशन भी हो सकता है।

ब्रह्मचारी - हम दूसरे के बारे में क्यों सोचें कि वह गलत कर रहा है, करने दो उसे ?

पू. आर्यिकाश्री - विचार करो, यदि ऐसा ही हमारे बारे में हमारे गुरु सोच लेते तो हम यहाँ तक कैसे आ पाते, आचार्य कुन्दकुन्द, अकलंकदेव, आचार्य समन्तभद्र·····आदि, यदि इतने ग्रन्थों की रचना नहीं करते तो हमें मार्ग कहाँ से मिलता ? इसलिए मैं सोचती हूँ कि मेरे गुरु ने मुझे दिया है तो मैं अपनी क्षमता अनुसार इसे पार्सल कर दूँ, दूसरों को दे दूँ ताकि उनका उपकार कुछ अंशों में चुका सकूँ। कोई हमारी माने या न माने, हमारा काम उसे बताना है, करना, न करना उसकी मर्जी पर है। जब हम अपने शरीर के कारण इतनी सारी प्रवृत्तियाँ करते हैं तो कुछ धर्म की प्रभावना के लिए भी करना चाहिए और यदि धर्म की प्रभावना न हो तो भी हम संक्लेश परिणाम तो नहीं करेंगे, ऐसा मेरा उद्देश्य है।

१५. जैनत्व को सुरक्षित किया

ब्रह्मचारी. - पू. माताजी ! आजकल हमारे साधु वर्ग जैन स्कूल खोलने की प्रेरणा क्यों कर रहे हैं ?

पू. आर्यिकाश्री - भैया ! जैन स्कूल खोलने की प्रेरणा साधुवर्ग इसलिए देते हैं कि यदि हम अपने बच्चों को जैन स्कूलों में भेजते रहेंगे तो उनमें जैनत्व के संस्कार बने रहेंगे, भले ही वहाँ जैनधर्म की पढ़ाई न हो लेकिन माहौल जैनियों का ही रहेगा क्योंकि वहाँ बहुप्रतिशत जैन बच्चे व जैन शिक्षक ही रहेंगे और उनकी मित्र-मण्डली भी जैन ही रहेगी। इससे उनमें कुदेवों के प्रति आस्था नहीं बन पायेगी और भोजन में भी शाकाहार ही रहेगा क्योंकि जैन लोग मांसाहार नहीं करते हैं और यदि आप अन्य स्कूलों में बच्चों को भेजते हैं तो बच्चे जैनधर्म को नहीं जान पाते हैं। उन पर शिक्षकों के ही संस्कार पड़ते हैं। एक बार एक स्कूल बस के ड-ाइवर ने बच्चों से कहा-बच्चो ! आज बस नहीं चल रही है। तुम सब अपने-अपने भगवान का नाम लो। सभी बच्चों ने अपने-अपने भगवान

का नाम लिया लेकिन बस नहीं चली, क्यों ? क्योंकि बस का चलाना तो ड-इवर के हाथ में था। फिर ड-इवर ने कहा-देखो, अब मैं अपने भगवान ईसामसीह का नाम लेता हूँ, तुम भी लेना और उसने सभी बच्चों से ईसामसीह का नाम बुलवा कर बस चालू कर दी, इस प्रकार बच्चों पर अन्य धर्मों की श्रद्धा जम जाती है तथा मित्रों की भोजन-सामग्री देखकर मांसाहारी भोजन के संस्कार भी पड़ सकते हैं। बच्चे रहे कोमल हृदय वाले, जैसा कहा वैसा मान लिया, अत: भैया जैन स्कूल खोलने की प्रेरणा करना मतलब युगों-युगों तक जैनत्व को सुरक्षित रखने की प्रेरणा करना है !

१६. विमानोत्सव क्यों ?

श्रावक - पू. आर्यिकाश्री जी ! हमारे जिनालयों में जब रोज-रोज अभिषेक होता ही है फिर ये विमानोत्सव करके बाहर अभिषेक करने की क्या आवश्यकता है ? श्रीजी की शोभा-यात्रा निकालने की परम्परा क्यों ? सभी प्रतिदिन जिनमंदिर में दर्शन करते ही हैं, फिर बाहर लाकर सभी को दर्शन करवाने की आवश्यकता क्यों है ?

पू. आर्यिकाश्री - विमानोत्सवादि करने का मुख्य उद्देश्य जिनधर्म की प्रभावना करना है। अन्य भी बहुत से कारण हैं कि जो जाति से जैन होकर भी नास्तिक है, कभी जिनमंदिर में दर्शन करने नहीं जाता है और जो आस्तिक तो हैं पर उनके पास समय नहीं है; उनके लिए समवसरण का प्रतीक रूप विमान-महोत्सव करके श्रीजी का विहार करवाते हैं ताकि उन लोगों को भी श्रीजी के दर्शन हो जायें। उस क्षण में किये गये जिनेन्द्रदर्शन से भी उनका अनादिकालीन मिथ्यात्व खण्ड-खण्ड हो सकता है। इसलिए श्रीजी की शोभायात्रा प्रत्येक जैन के घर के बाहर से होकर निकलती है। एक कारण और भी है कि जो लाचार असमर्थ हैं, जिनालय तक नहीं पहुँच पाते हैं उनको भी श्री जिनेन्द्रदेव के दर्शन हो जायें। सभी अपनी आस्था रूपी भेंट अपने आराध्य के चरणों में समर्पित करते हुए अपने को धन्य व बड़भागी मानते हैं। अन्य कारण यह भी है कि जिन लोगों को हम अपनी सामाजिक व्यवस्थाओं के कारण या अपनी धार्मिक परम्पराओं के कारण मंदिर में प्रवेश नहीं करने देते हैं एवं तिर्यंच, गाय, भैंस,

कुत्ता, बिल्ली·····आदि पशु भी जिनालयों में नहीं जा सकते हैं, उनको भी श्रीजी की शोभायात्रा निकलने से तीन लोक के नाथ के दर्शन हो जाते हैं तथा जो जैनेतर हैं, नीच कुल वाले हैं उनको भी श्री जिनेन्द्र देव के दर्शन हो जाते हैं। वे भी श्रद्धा करके सम्यक्दर्शन प्राप्त कर सकते हैं जिससे उनका अथाह संसार-सागर चुल्लू भर रह जाये, उनका भी कल्याण हो जाए।

संसार के सभी भव्य प्राणी अपना कल्याण कर सकें, इसी भावना से विमानोत्सव की परम्परा है और होनी भी चाहिए।

१७. भोगों की इच्छा नहीं करो....

ब्र. बहिन - शलाका पुरुष निश्चित रूप से मोक्ष जाते हैं, फिर ऐसा क्यों कहा जाता है -

मैं चक्रीपद पाय निरन्तर भोगे भोग घनेरे।

तो भी तनक भये नहिं पूरन भोग मनोरथ मेरे॥

पू. आर्यिकाश्री - यह सच है कि शलाका पुरुष निश्चित रूप से मोक्ष जाते हैं। चक्रवर्ती, नारायण·····आदि पद एक जीव एक बार ही पा सकता है। लेकिन इसका अर्थ यह लेना चाहिए कि ''चक्रवर्ती·····आदि पद पाकर भी अनेकानेक भोग बचपन से ही निरन्तर भोग रहा हूँ, भोगता आ रहा हूँ पूरे जीवन भर तो भी भोगों की लालसा पूरी नहीं हुई, और-और की चाह बनी ही रही है।'' अब सोचो-भरत चक्रवर्ती की आयु ८४ लाख वर्ष पूर्व की थी, अर्थात् ७ नील ५ खरब ६० अरब वर्षों तक भोग भोगने पर भी मन तृप्त नहीं होता है। इसलिए भोगों की इच्छा नहीं करो, सदैव इन्हें छोड़ने का पुरुषार्थ करो, इनसे दूर हटने का प्रयास करो, तभी साधना कर पाओगे, आत्म-कल्याण कर पाओगे!

१८. आखिर क्या पूछा होगा....

संघस्थ आर्यिकाजी - राजा श्रेणिक ने भगवान महावीर स्वामी से ६०,००० प्रश्न पूछे थे तो क्या पूछा होगा उन्होंने, समझ में नहीं आता है ?

पू. आर्यिकाश्री - राजा श्रेणिक ने सर्वाधिक प्रश्न पुराण-पुरुषों के

चरित्र के संदर्भ में किये थे। क्योंकि कहीं पर भी यह नहीं आता है कि उन्होंने करणानुयोग के बारे में पूछा हो। हाँ, यह बात जरूर है, चरित्र बताते समय दिव्यध्वनि में चारों अनुयोगों को बताया गया है।

प्रश्न - दिव्यध्वनि में कारण क्या है ?

उत्तर - माताजी ! भगवान की दिव्यध्वनि को प्रसारित करने में उपादान कारण-शब्द जड़ है, पुद्गल है तो पुद्गल की क्रियावती शक्ति है और धर्मद्रव्य उदासीन निमित्त है तथा मागध-जाति के देव प्रेरक निमित्त हैं एवं भव्य-जीवों की भव्यता और उनका पुण्य सामान्य कारण है।

१९. कषायों के उदयाभाव में धर्म है....

श्रावक - सम्यग्दृष्टि भी माला फेरता है और मिथ्यादृष्टि भी माला फेरता है, दोनों के माला फेरने में क्या अन्तर है ?

पू. आर्यिकाश्री - माला फेरते समय दोनों ही पुण्य का बंध करते हैं लेकिन सम्यग्दृष्टि का पुण्य परम्परा से धर्म को, मोक्षमार्ग को प्राप्त कराने वाला है, क्योंकि उसके एक चौकड़ी कषाय का अभाव है, जबकि मिथ्यादृष्टि का पुण्य संसार में रुलाने वाला ही है, भले ही उसकी कषायें मन्द हों, लेश्या की विशुद्धि हो फिर भी धर्म नहीं है, क्योंकि कषायों की मंदता धर्म नहीं है वरन् कषायों के उदयाभाव को धर्म कहा है।

श्रावक - पू. माताजी ! कषायों की मंदता में भी तो धर्म कहा है, क्योंकि सम्यग्दृष्टि के एक चौकड़ी कषाय का अभाव है तो तीन चौकड़ी कषाय का उदय भी है ?

पू. आर्यिकाश्री - नहीं, चतुर्थ गुणस्थान में एक चौकड़ी कषाय का अभाव होने से धर्म नहीं होता है, यह धर्म की भूमिका है। वह बंधन में है अभी स्वतंत्र नहीं है। सब कुछ मिलने पर भी बंधन से दुखी है। जैसे-नेता जेल में है, जेल में घर से भी अच्छी व्यवस्थाएँ हैं, फिर भी दुखी क्यों है, क्योंकि बंधन है। घर में सभी व्यवस्थाएँ न होने पर भी स्वतंत्र है इसलिए सुखी है। आगे पंचम गुणस्थान में दो चौकड़ी कषाय का अभाव हुआ तो एकदेश धर्म है और तीन चौकड़ी कषाय का अभाव हुआ तो छठे गुणस्थान में सर्वदेश धर्म

है श्रमण का, फिर भी अभी धर्म पूर्ण नहीं है। धर्म की पूर्णता तो कषाय के अभाव में ही होती है। धर्म तो रत्नत्रय रूप है। लोक में दान, पूजा, अभिषेक.....आदि को धर्म कह दिया जाता है परन्तु वह धर्म नहीं धर्म की भूमिका मात्र है। कषायों के अभाव व कषायों की मन्दता के संदर्भ में दादागुरु आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज ने लिखा है कि पंचम-गुणस्थान वाले के दो चौकड़ी कषाय का अभाव है, फिर भी दो चौकड़ी कषाय का उदय होने पर परिणामों में विकलता आ सकती है। किन्तु वह कभी अभक्ष्य नहीं खायेगा, उसे भोगों के प्रति हेय-उपादेय का ज्ञान रहेगा; जबकि चौथे गुणस्थान वाले के एक चौकड़ी कषाय का अभाव है परन्तु तीन चौकड़ी कषाय का उदय होने से संयम के अभाव में भक्ष्य-अभक्ष्य का विवेक नहीं रहता, लेश्या की विशुद्धि है, कषायें मन्द हैं फिर भी धर्म नहीं है। धर्म संयम के साथ ही होता है। कर्म-निर्जरा भी संयम के साथ ही होती है। मिथ्यादृष्टि धर्म मानकर क्रियायें करता है, धर्म नहीं करता है!

२०. तो भी असाता ही बँधेगी

ब्र. शोभा - पू. माताजी ! जब नहाने से शरीर का उपकार होता है फिर भी असाता बँधती है तो क्या भगवान के पूजाभिषेक के निमित्त नहाने से भी असाता ही बँधेगी ?

पू. आर्यिकाश्री - हाँ बहिन ! नहाते समय तो असाता ही बँधेगी लेकिन इतना अवश्य है कि भगवान की पूजा-अभिषेक करने से जो साता बँधेगी उससे वह असाता न्यूनतम ही बँधेगी।

ब्र. शोभा - पू. माताजी ! कोई एक मिनट में नहाकर तैयार हो गया और कोई आधा घंटे तक नहा रहा है, क्या इससे भी पाप में अंतर पड़ेगा ?

पू. आर्यिकाश्री - हाँ, जितना समय लगा उतनी देर तक असाता ही बँधेगी। लेकिन एक मिनट वाले को डली रूप बँधेगी तो आधा घंटे वाले को ढेर सारी बँधेगी, इसमें भी अपने आसक्ति परिणाम से ही पाप लगेगा। कोई-एक मिनट में भी अधिक आसक्ति से नहा सकता है और कोई अधिक समय में भी निस्पृहता से नहा सकता है। एक सोचता है-अभी नहाते हैं, ठण्ड लग रही है या पानी गर्म है, काश ! मैं मुनि होता, मेरे भी अस्नान व्रत होता तो

मुझे नहाना ही नहीं पड़ता, भगवान ! कब मैं भी अस्नानव्रत धारण करूँ, ऐसे भाव करने वाला अधिक समय तक बहुत देर तक नहाने के बाद भी कम स्थिति-अनुभाग के साथ असाता बाँधेगा और एक मिनट में नहाने वाला सोच रहा है- चलो, नहा लिया स्वच्छ हो गया, अब ताजगी सी आ गयी है तो उसके कम समय में भी अधिक स्थिति-अनुभाग के साथ असाता बँधेगी।

इसलिए क्रिया के साथ-साथ होने वाले परिणामों पर भी नजर रखो, उनके आधार से ही कर्म का बंध होता है। अत: परिणामों को हमेशा देखते रहना चाहिए।

२१. कषायों पर नियंत्रण रखना सीखो....

ब्र. शोभा - पू. माताजी ! हम बहुत सोचते हैं कि अब हम संक्लेश नहीं करेंगे। कषायों पर नियंत्रण रखेंगे ? परन्तु सोचते-सोचते भी पता ही नहीं चलता कब ऐसा हो जाता है ?

पू. आर्यिकाश्री - बहिन ! ऐसा है कि हम सोचते तो हैं लेकिन निमित्त मिलने पर, समय आने पर पुरुषार्थ भूल जाते हैं और हमारे अनादिकालीन संस्कार होने से ऐसा हो जाता है। रागद्वेष छोड़ने के लिए भी हम राग-द्वेष करते हैं इसलिए भी नहीं छोड़ पाते हैं। हम हर क्षण कषाय करते रहते हैं, चाहे राग रूप हो या द्वेष रूप हो, उससे असाता ही बँधती है। प्रतिकूलता मिले या अनुकूलता, सभी में कर्म का उदय है ऐसा सोचना चाहिए और ऐसा सोच लिया तो हर्ष-विषाद नहीं होगा तथा हर्ष-विषाद नहीं हुआ तो कर्म के बंध में स्थिति-अनुभाग में अन्तर आ जाता है। संसार में जो कुछ भी हो रहा है, सभी कर्म के उदय में हो रहा है, ऐसा विचार करके कर्मबंध के बारे में विचार करते रहें तो हम संक्लेश से सम्भवत: बच सकते हैं। कर्म के उदय, कर्म के बंध के बारे में सोचने मात्र से कर्म क्षय नहीं होते हैं एवं मोक्ष भी नहीं होता है। कर्मक्षय तो सही दिशा में पुरुषार्थ करने पर होता है तथा मोक्ष कर्मक्षय होने पर ही होगा। अभी क्या है, अभी तो वैराग्य की भूमिका भी तैयार नहीं हुई और जब तक वैराग्य की पूर्णता नहीं होगी तब तक संक्लेश नहीं मिट सकता। वैराग्य की तरफ कदम बढ़ाने चाहिए। कर्मोदय के बारे में बार-बार चिन्तन करने से भी हम कषायों पर नियंत्रण रख सकते हैं ।

२२. सीमित भी नहीं हुआ....

गृहस्थ - पू. माताजी ! हेय-उपादेय को समझने से क्या लाभ है ?

पू. आर्यिकाश्री - जब तक हम हेय-उपादेय को नहीं समझते हैं तब तक हमारा यह पिच्छी-कमण्डलु लेना, व्रत, जप, त्याग, तप, दान, पूजा....आदि सभी क्रियायें करना कार्यकारी नहीं है, मात्र ढेर लगाना है, गिनती करने जैसा है। हम हर कार्य करते समय यह ध्यान रखें कि हम जो खा रहे हैं, सो रहे हैं, चल रहे हैं, बोल रहे हैं वह उपादेय है या हेय। यदि उपादेय है तो क्यों ? यदि हेय है तो क्यों ? क्या इन सबको किये बिना भी हम रह सकते हैं ? हम जब तक इन सबको उपादेय मानते रहेंगे तब तक संसार-सागर समाप्त तो क्या सीमित भी नहीं हो सकता है। अत: हेय-उपादेय को जानना जरूरी है।

२३. अधिक निर्जरा....

गृहस्थश्रावक - पू. माताजी ! अष्टमी और चौदस को उपवास करने से क्या अधिक निर्जरा होती है ?

पू. आर्यिकाश्री - हाँ, अष्टमी, चतुर्दशी को उपवास करने से अधिक निर्जरा होती है क्योंकि अष्टमी पक्ष का संधिकाल है तो चतुर्दशी माह का संधिकाल है। सो इन दिनों में ग्रहों की स्थितियाँ भी कुछ विशेष होती हैं और उनके कारण समुद्र में ज्वारभाटा आदि भी आता है। इससे इन दिनों में कुछ विपत्तियों के आने की संभावना रहती है अत: इन दिनो में विशेष रूप से धर्म की आराधना करनी चाहिए, मंत्रों का जाप करना चाहिए, ताकि विपत्तियाँ दूर ही रहें, पास में न आयें। अन्य दिनों में किये व्रत, उपवास, पूजा, जाप आदि अनुष्ठान करने पर इतनी निर्जरा नहीं होती है जितनी कि अष्टमी चौदस·····आदि पर्व के दिनों में उपवास, जाप-विधान·····आदि करने पर होती है। मंत्रों की सिद्धियाँ व मंत्रों का प्रभाव भी इन दिनों में विशेष रहता है। एक सेठ था। उसकी सेठानी बड़ी ही धर्मात्मा थी किन्तु उसके पुत्र नहीं था सो उसने वंश-परम्परा चलाने के लिए सेठ को दूसरी शादी करने के लिए कहा और स्वयं संसार से उदासीन होकर मन्दिर में रहने लगी। सेठ ने दूसरी शादी करली और उसके पुत्र भी हो

गया। पुत्रोत्पत्ति के बाद सेठ भी प्रथम पत्नी की भाँति विरक्त होकर मन्दिर में रहने लगा। तब दूसरी पत्नी सौतिया डाह से जल उठी। उसकी माँ ने एक मांत्रिक को बुलाकर सेठ की प्रथम पत्नी को मारने के लिए कहा। सो उस मांत्रिक ने चतुर्दशी को कार्य सिद्ध करने के लिए कहा। आठ दिन तक उसने विद्या सिद्ध की और चतुर्दशी के दिन सेठानी के पास भेजा। उस समय सेठानी सामायिक कर रही थी, विद्याएँ भी संधिकाल में काम करती हैं लेकिन सामायिक करने से विद्या वापस मांत्रिक के पास आ गई। उसने तीन बार उसे भेजा परन्तु सेठानी के सामायिक करने के कारण तीनों बार ही वह वापस आ गई। विद्याएँ, मंत्र, तंत्र.....आदि अष्टमी चतुर्दशी को ही सिद्ध होती हैं। हर धर्म में संधिकाल की महिमा है, महत्त्व है। मुसलमान भी १२ बजे मस्जिद जाते हैं, नमाज अदा करते हैं। फिर हम तो धर्म समझते हैं तो संधिकाल में भोग क्यों करें? संधिकाल में धर्म करने से विशेष निर्जरा होती है !

२४. चतुर्थकाल में भी....

गृहस्थ - पू. माताजी ! चौथे काल में भी साधु नगरों में रहते थे क्या?

पू. आर्यिकाश्री - हाँ ! मेरे विचार से तो चौथेकाल में भी साधु नगरों में रहते थे क्योंकि प्रथमानुयोग में आया है कि सुकुमाल को वैराग्य वर्षाकाल में मुनिराज द्वारा किये जा रहे **त्रिलोक प्रज्ञप्ति** के पाठ को सुनकर हुआ है वो भी प्रत्यूष काल में। सोचो, विचार करो। क्या मुनिमहाराज पाठ भी माइक से करते थे और वो भी सुबह-सुबह। दूसरी बात, सुकुमाल नगर सेठ का बेटा था तो क्या नगरसेठ नगर के बाहर रहता था। यह हो नहीं सकता है या ऐसा नहीं कहा जा सकता है। इन सब संदर्भों को पढ़कर तो लगता है कि उस समय साधु नगरों में भी रहते थे।